1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-6, अंक-1, अगस्त-सितम्बर 2022, ₹50/-

आज़ादी का अमृत महोत्सव

सफलता के पथ पर निरंतर अग्रसर
26 वाँ वर्ष...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक त्रैमासिक पत्रिका

शारदीय महारास : भित्ति चित्र गढ़ पैलेस,
झालावाड़ : उन्नीसवीं सदी नाथद्वारा शैली के महान चित्रकार घांसीराम का कार्य

कला एवं कलाकार विशेषांक

संपादक : भँवरलाल श्रीवास

आज़ादी का अमृत महोत्सव

कभी कभी

दिल की बात

ही मायने रखती है

Delivering Happiness

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड हमेशा से अपनी सीएसआर गतिविधियों के माध्यम से परिवर्तन का स्रोत होने में विश्वास रखता रहा है। सीएसआर को मुख्य व्यवसाय के साथ अपनाकर, एचपीसीएल लोगों के जीवन में सार्थक बदलाव लाते हुए खुशियाँ बिखेरने के लिए प्रतिबद्ध है। बच्चों की देखभाल, शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, खेलकूद और सामुदायिक विकास जैसे प्रमुख क्षेत्रों में अभिनव, मूल्यवान और बेहतर तरीके से बनाई गई सीएसआर परियोजनाएं समाज के बहुसंख्य वंचित वर्गों तक पहुंचने में हमारी सहायता करती हैं ।

MoPNG eSEVA : तेल एवं गैस संबंधित शीघ्र कार्रवाई हेतु किसी पूछताछ के लिए कृपया /MoPNGeSeva | /MoPNG_eSeva पर संपर्क करें

/hpcl | /hpcl | /hpcl
www.hindustanpetroleum.com

Wear reusable face cover or mask

Wash hands frequently and thoroughly

2 Gaj ki Doori (6 feet) Maintain Physical Distance

RNI NO. MPHIN/2017/73838

1998 से निरंतर प्रकाशित

देश की सर्वश्रेष्ठ एक मात्र सांस्कृतिक पत्रिका

कला समय पत्रिका वेबसाइट पर उपलब्ध

www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X

(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)

(वर्ष : 20+06=26) पूर्णांक-118

वर्ष-6, अंक-1, अगस्त-सितम्बर -2022, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरु सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

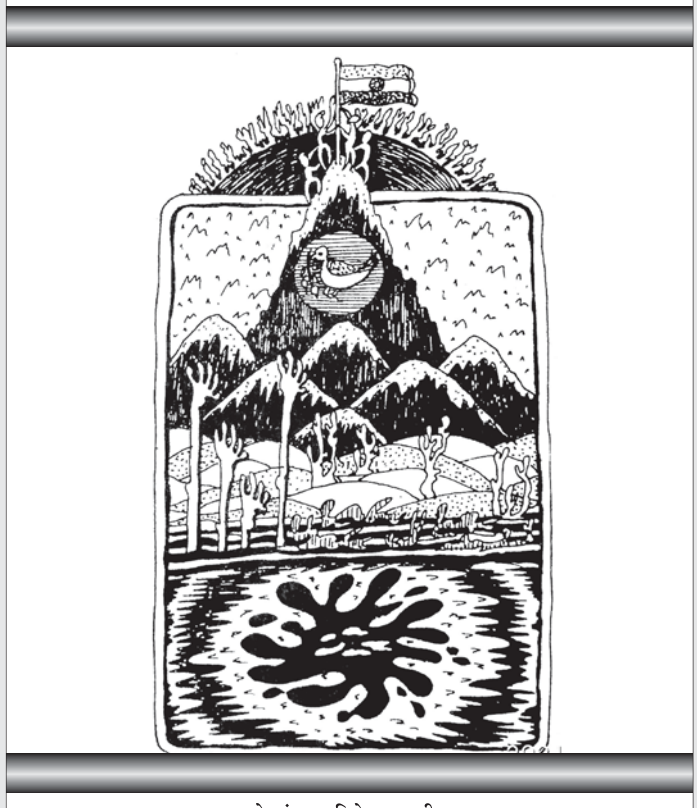

रेखांकन : प्रियेश मालवीय

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षड़ंगी राजाराम
साहित्य
अरुण तिवारी
समसामयिक
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख विद्वान हस्ताक्षर...

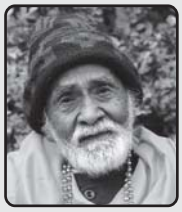
आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

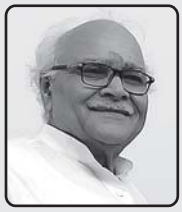
डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

मनोज श्रीवास्तव

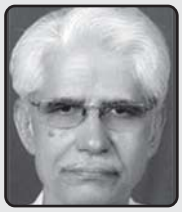
प्रभुदयाल मिश्र

रमेश दवे

शम्भुदयाल गुरु

अश्विनी कुमार दुबे

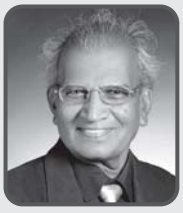
डॉ. महेन्द्र भानावत

डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल

डॉ. घनश्याम बटवाल

जगदीश कौशल

राजकुमार बेहरुपिया

प्रीति निगोसकर

इस बार

- संपादकीय 05
- **आलेख** 08
  मालवा की मनोहारी चित्रांकन परंपरा ... / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- **अद्वैत-विमर्श**
  आदिशंकर के अद्वैत में शक्ति और माया का अद्वय / प्रभुदयाल मिश्र 14
  आदिगुरु शंकराचार्य और विवेकानंद/ मनोज श्रीवास्तव 18
  अमरूक शतक बुंदेली रूपांतरण / आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल 20
- **आलेख**
  रास / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी 24
  आजीवन कारावास को अभिशप्त... / डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल 28
  कला बड़ी या कलाकार / राजकुमार बेहरुपिया 33
  रंगो से सराबोर / प्रीति निगोसकर 37
  होली और संगीत की वैश्विकता / डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल 39
- **हुनर वीथि**
  हरीश श्रीवास एवं लता श्रीवास की कलाकृतियाँ 43
- **मध्यांतर**
  विश्व कविता : मणि मोहन 51
  गीत : यतीन्द्रनाथ राही के गीत 52
  कविता : दुर्गाप्रसाद झाला की कविताएँ 53
  ग़ज़ल : महेश कटारे 'सुगम' की गजलें 54
- **सिनेमा**
  देंगे वही जो पाएँगे इस ज़िंदगी से हम / अश्विनी कुमार दुबे 55
- **पुस्तक समीक्षा**
  महाभारत का सच / सूर्यकांत नागर 63
  लोक में कबीर / विजय मनोहर तिवारी 65
  महफ़िल शब्द-सुरों की / डॉ. शिल्पा बहुलेकर 67
  संगीत शिक्षा और व्यक्तित्व विकास / डॉ. शिल्पा बहुलेकर 69
  शोध प्रबंध ग्रंथ / शशिकांत लिमये 71
- **नाटक**
  ज़िन्दगी और जोंक 73
- **समवेत** 76
  बाबूजी जैसा ईमानदार, कर्मठ, लगनशील पत्रकार मैंने नहीं देखा: डॉ. शंभुदयाल / जी. पी. बिड़ला संग्रहालय भोपाल में भारतीय लोक कला में श्री गणेश प्रदर्शनी / कलाविद् नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की कृति 'मालवा के भित्तिचित्र' राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित / श्री सदाशिव कौतुक भाषा उन्नयन सम्मान समारोह सम्पन्न / हमें जगदीश कौशल के व्यक्तित्व से प्रेरणा लेना चाहिए : अरविंद चतुर्वेदी / लेखक, रंगकर्मी शशिकान्त लिमये द्वारा कृतियाँ भेंट / सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन शोध पीठ भोपाल ारा सम्मानों की घोषणा / डॉ. महेन्द्र भानावत को लोकभूषण सम्मान / परंपरागत ग़ज़ल के लिए हिंदी ग़ज़ल एक वरदान है !: सिद्धेश्वर / मानसिक ही नहीं शारीरिक आरोग्य भी देती है ये पदयात्राएं :ओम द्विवेदी / महात्मा गांधी सम्मान से सम्मानित होंगे नर्मदा प्रसाद उपाध्याय / मध्यप्रदेश के गुमनाम क्रांतिकारी कृति का विमोचन
- **समय की धरोहर**
  सुविख्यात ठुमरी गायिका सविता देवी 84
- **संस्मरण**
  ठुमरी गायन की कला तो हमें विरासत... / जगदीश कौशल 85
- **पत्रिका के बहाने** 86

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र एवं अंतिम आवरण चित्र** - नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के सौजन्य से | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **सहयोग**- धन सिंह, लता श्रीवास | **रेखांकन :** प्रियेश मालवीय **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

संपादकीय

कला समय के सार्थक 25 वर्ष

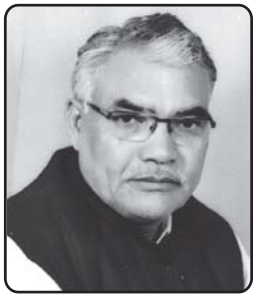

''गति प्रबल पैरों में भरी,
तब क्यों रहूँ दर-दर खड़ा
जब आज मेरे सामने है रास्ता इतना पड़ा
जब तक न मंजिल पा सकूँ
तब तक न मुझे विराम है।
चलना हमारा काम है...
-डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन'

किसी की प्रतिस्पर्धा और दावे को दरकिनार करते 'कला समय' ने सधी चाल से पच्चीस वर्षो की यात्रा पूरी करली। मुझे इस निरन्तरता पर संतोष है। इस मौके पर गुज़रे वक्त को मुड़-मुड़ कर देखना और स्मृतियों को सहलाना स्वाभाविक ही मन को अच्छा लगता है। खरोचें भी हैं, खुशियों की सौगातें भी हैं। गनीमत, कि समझौतों - के दरवाजों पर माथा झुकाने की नौबत नहीं आई और अपनी बुनियादी ज़िद पर कायम रहते यह अंतराल इस पत्रिका ने पार किया है। प्रसंगवश राजेश्वर आचार्य का कहा यहाँ आपसे साझा करने का मन है। ''इस जीवित शरीर को मैं प्रणाम करता हूँ और प्रभु! से कामना करता हूँ कि मुझे जितना समय दिया है जीने का उसमें से प्रभु कम कर लेना किन्तु 'कला समय' पत्रिका को रूकने न देना इसकों बढ़ने देना!''शुभ मुहूर्त में नाद ब्रह्म के उपासक प्रतिष्ठित संस्कृति कर्मी ने 29 जनवरी 1998 को रवीन्द्र भवन का विशाल सभागार आंगतुक- शुभैषियों से खचाखच भरा था। शाम गौधूलि बैला के पावन समय, शुभ घड़ी में निकला यह ब्रह्म वाक्य 'कला समय' के लिये इस पुण्य-आत्मा का वरदान था। इस अवधि में कोरोना महामारी भी आई परन्तु 'कला समय' ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

कला समय पत्रिका:

अपने समय के सुप्रसिद्ध कलाकार जनगढ़सिंह श्याम ने पत्रिका प्रवेशांक हेतु आवरण पेंटिंग बनाई। लोगो देश के महान कलाकार संस्कृति कर्मी भी हरचन्दन सिंह भट्टी ने बनाया। पहला आलेख प्रख्यात साहित्यकार श्री रमेश दवे का ''शब्द से शब्द तक कलाओं का कृतिकर्म'' प्रकाशित हुआ। और रेखाचित्र श्री देवीलाल पाटीदार के प्रकाशित हुए। अप्रैल 1998 में इंडिया टुडे में कला समय पत्रिका प्रवेशांक की खबर आवरण सहित प्राथमिकता से छपी। यह प्रवेशांक कबीर, तुलसी, गालिब निराला, ओ. ना. ठाकुर, फ़िराक, नवीनजी के पावन स्मृति को कृतज्ञतापूर्व समर्पित किया। इन 25 वर्षो के निरन्तरता के दौरान कई महत्वपूर्ण दस्तावेज, संग्रहणीय विशेषांक भी निकाले - हबीब तनवीर, विष्णु चिंचालकर, वामन ठाकरे ब. व. कारंत, खजुराहो नृत्य समारोह, भारत भवन, गुलर्वधन, भवानी प्रसाद मिश्र, विलुप्त होती लोक कलाएं, महात्मा गांधी का 150वाँ जयंती वर्ष, पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर, विश्वरंग, श्रीगुरुनानक देवजी का 550 वाँ प्रकाश पर्व, डॉ. अरविंद विष्णु जोशी डॉ. नारायण

व्यास लघुचित्र और साहित्य के अंतर्संबध धरोहर के संग्राहक और शिल्पकार, अरूण तिवारी अमृत–जयंती, प्रो. राजाराम–स्मरण, स्वतन्त्रता आंदोलन में मध्य प्रदेश की गौरव गाथा (1857–1947), नादब्रह्म प्रमुख है। पत्रिका के संरक्षक पितृ पुरुष श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, डॉ. महेन्द्र भानावत, डॉ. श्याम सुन्दर दुबे, कैलाश चन्द्र घनश्याम पाण्डेय जिनका आर्शिवाद और मार्ग दर्शन हमेशा कला समय को मिलता रहा है। पत्रिका के आजीवन सदस्य श्री दीपक पंडित, प्रो. डी. मधुभट्ट तैलंग, श्रीमती माधवी नानल, डॉ. विनय षड्गी राजाराम, श्रीमती अर्चना अरविन्द जोशी, श्री धर्मपाल महेंद्र जैन, श्री जगदीश कौशल सहित की कैलाशचन्द्र घनश्याम पांडेण्य (मन्दसौर) द्वारा प्रतिवर्ष रू 5000/– का कला समय पत्रिका को देने का संकल्प वंदनीय है। यह कला समय की निरन्तरता की ताकत है। संपादक मंडल, परामर्श मंडल सहित सलाहकार संपादक का समय–समय पर पत्रिका हेतु आवश्यक मार्ग दर्शन मिलता रहा है। सुन्दर छपाई, लेआउट, डिजाइन गणेश ग्राफिक्स और श्री मनोज माकोड़े जी के सद् प्रयासों प्रथाओं से कला समय के सम्पादक को पत्रिका हेतु ''साहित्यश्री'', ''सम्पादक रत्न'' एवं लाइफटाइम अचीवमेन्ट सम्मान से पत्रिका 'कला समय' को 'देश' में एक नई पहचान मिली है!

हम मध्य प्रदेश शासन जनसम्पर्क विभाग के विशेष आभारी है। और अन्य सहयोगी विज्ञापनदाताकतों के जिनके आर्थिक सहयोग के बिना संसाधन विहीन यह लघु पत्रिका कला, साहित्य, संस्कृति और हिन्दी की सेवा शायद नही कर पाती! हम आप सभी के प्रति आभारी है।

कला समय संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा समितिः

पत्रिका कला समय ने कलाकारों, साहित्यकारों को मंच उपलब्ध कराने तथा शिक्षा और समाज सेवा के कार्यों में अपनी सहभागिता के उद्देश्य, से वर्ष 2013 अर्थात 10 वर्ष पूर्व कला समय संस्था का गठन किया गया वर्तमान कार्यकारिर्णी अध्यक्ष– पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट ''रसरंग'', उपाध्यक्ष– श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि सचिव भँवरलाल श्रीवास, कोषाध्यक्ष सुश्री नरिन्दर कौर, सहसचिव श्री मनीष सराठे, सम्माननीय सदस्य सुश्री चेतना श्रीवास तथा श्री धनसिंह बनर्जी है। संस्था संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार एवं मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग तथा जन सहयोग से प्रतिवर्ष प्रतिष्ठापूर्ण आयोजन करती है। ''संस्कृति–पर्व तथा आरोही!'' प्रमुख है। इसके अंतर्गत वरिष्ठ और युवा पीढ़ियों को साथ में लेकर गुरु–शिष्य परम्परा के अंतर्गत नाटक, गायन, वादन, नृत्य, प्रदर्शनी, बाल समर केम्प, अतिथि आयोजन, साहित समाज सेवा, शिक्षा जैसे कार्य सम्पन्न करती है। प्रत्येक वर्ष वरिष्ठ तथा युवापीढ़ी के सृजनरत कलाकारों, समाज सेवीयों को कला समय शिखर सम्मान से नवाजा जाता है संस्था द्वारा अभी तक शहर के प्रमुख सभागार भारत भवन, समनवय भवन, रवीन्द्र भवन, राज्य संग्रहालय, स्वराज भवन तथा दुष्यन्त स्मारक पांडुलिपि संग्रहालय मे अपनी प्रस्तुतियाँ, आयोजन कर चुकी है। इनमें कलापिनी कोमकली उस्ताद, सिराज खान, उस्ताद असद खान, संगीता गोस्वामी, नागेश अडगांवकर, नीरजा सक्सेना, नितेश मांगरोले सुश्री जयश्री सवागुंजी, रामेन्द्र सिंह सोलंकी, रोमन दास, नीलेश खोड़े, अमन मलक, अनूप शर्मा, मनोज पाटीदार, ज्ञानप्रसाद फुलारी, सागरं पटोकार, डॉ. दीप्ति गेड़ाम परमार आरती मारन, सुश्री नगीन तनवीर इत्यादि। प्रदर्शनियाँ, आनंद श्याम, मनोहर काजल, जगदीश कौशल तथा एक ब्रश राष्ट्र के नाम अतिथि प्रदर्शनी। श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि द्वारा लिखित नाटक 'जमोला का लमझना' श्री आलोक चटर्जी द्वारा तैयार कराकर मंचन कराया गया। संस्था कला समय द्वारा समय–समय पर काव्य गोष्ठीयां, कला संवाद, कला प्रंसग, पाठ, छबि संवाद, पुस्तक लोकार्पण समरकेम्प, पौधरोपण, योग, चित्रकला प्रतियोगिता, शिक्षाप्रद आयोजन करती है। कला समय संस्था मंच पर, श्री रमेशचंद्रशाह, बाबा योगेद्र भारती, डॉ. कपिल तिवारी,(पद्मश्री सम्मानीत), पं. किरण देशपाण्डे, श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव, पं. सिद्धराम स्वामी कोरवार, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे, श्री नर्मदा

प्रसाद उपाध्याय, श्री कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय, श्री राजेश जोशी, श्री अशोक शाह, श्री विजय मनोहर तिवारी, श्री संतोष चौबे, डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा, श्री घनश्याम सक्सेना, श्री संजय मेहता डॉ. देवेन्द्र दीपक, प्रो राजाराम, श्री रमेश जैन नूतन, श्रीमती कलाबाई, श्री आनंद श्याम, सुश्री नुसरत मेहदी, श्री बलराम गुमास्ता, श्री लक्ष्मीकान्त जवणे, श्री दीपक पंडित, श्री सुंदरलाल प्रजापति, श्री उल्हास तैलंग, श्री प्रेमशंकर शुक्ल, श्रीकांत आप्टे, श्री शांतिलाल जैन, श्री युगेश शर्मा इत्यादि। संस्था द्वारा सम्मानित सर्वप्रथम श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि को कला समय शब्द शिखर सम्मान, श्री आलोक चटर्जी को कला समय रंग शिखर सम्मान, डॉ लक्ष्मीनारायण गर्ग (हाथरस उ.प्र.) को कला समय संगीत शिखर सम्मान,डॉ. महेन्द्र भानावत उदयपुर (राजस्थान) को कला समय लोक शिखर सम्मान, डॉ. नारायण व्यास को कला समय पुराविद् शिखर सम्मान, श्री जगदीश कौशल को कला समय को प्रतिबिम्ब शिखर सम्मान, डॉ. दीप्ति गेड़ाम परमार को युवा स्वर साधना कला समय शिखर सम्मान से सम्मानित कर संस्था कला समय स्वयं गौरवान्वित है।

कला समय प्रकाशनः

कला समय पत्रिका, संस्था कला समय के साथ ही कला समय प्रकाशन का यह तृतीय सोपान! आपसे साझा करते हुए हमें खुशी है। मित्रों और शुभ चिंतकों का आग्रहपूर्ण सुझाव था कि कला समय को पुस्तक- प्रकाशन का कार्य भी शुरू करना चाहिए। हम मित्रों का सुझाव मानते हुए पुस्तक-प्रकाशन का दायित्व भी निभाने को तैयार है। अब कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जायेगा। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पाण्डुलिपियां आमंत्रित करते हैं। चयनित पाण्डुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तों के अनुसार किया जायेगा आपका सहयोग, मार्गदर्शन, इसी तरह आगे भी निरन्तर मिलता रहेगा। ऐसी अपेक्षा है।

शुभम भवतु !!

- भँवरलाल श्रीवास

आलेख

मालवा की मनोहारी चित्रांकन परंपरा ....

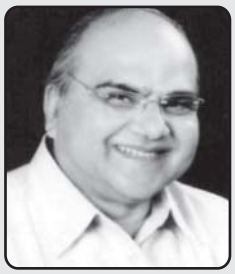

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

रूप को शब्द में बांधा जाए या शब्द को रूप में यह दोनों ही कार्य बड़े कठिन है। अभिव्यक्ति की अपनी सीमा होती है जबकि रूप और शब्द तो सीमातीत होते हैं लेकिन इस देश के शब्दकारों और चितेरों ने यह कमाल किया है कि उन्होंने रूप और शब्द को भी अपनी सीमाओं का अहसास कराया, फिर वे चाहे वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, सूर से लेकर बिहारी और केशव तक के महान् कवि हों या अजंता के मनोहारी रूपायनों के चितेरों से लेकर निहालचंद जैसे महान् चित्रकार जिन्होंने विश्व विख्यात ''बणी-ठणी'' को रूपायित कर शब्द और रूप को अपनी सीमातीत अभिव्यक्ति का अनुभव कराया।

जहाँ तक चित्रकला का संबंध है भारत की चित्रांकन परंपरा चाहे वह भित्तिचित्रों की रही हो, लघुचित्रों या तैलचित्रों की, अत्यंत समृद्ध रही है। भारत के मध्यकाल में बनाए गए लघुचित्र विश्व विख्यात है। लेकिन हमारी इस अनमोल विरासत से अधिकतर लोग अपरिचित है। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि पूरे भारत वर्ष के विभिन्न अंचलों में जो लघुचित्र बनाए गए उनसे विश्व भर के संग्रहालय भरे पड़े हैं लेकिन ये चित्र हैं क्या ? यह कोई बतलाने वाला भी नहीं है। या हैं तो वे लोग जो किताबी दुनिया के हैं और जिनके लिए शोध महत्वपूर्ण है, वह लोक उतना महत्वपूर्ण नहीं है जिसकी देन ये लघुचित्र और इनकी परंपराएं हैं।

लघुचित्र, पश्चिम के मिनिऐचर का पर्याय माना जाता है लेकिन मिनिएचर का अर्थ पश्चिम में व्यक्तिचित्र के क़रीब है जबकि हमारे यहाँ लघुचित्र का अर्थ एक छोटे से छोटे क्षेत्र में, बड़े से बड़े परिप्रेक्ष्य या प्रसंगों को पूरी बारीक़ी के साथ रूपायित करने से है।

हमारे देश में राजस्थान और हिमांचल प्रदेश दो ऐसे विशिष्ट प्रदेश हैं जहाँ मध्यकाल में छोटे-छोटे ठिकाणों से लेकर बड़ी-बड़ी रियासतों तक में अपनी-अपनी विशिष्ट शैलियों में लघुचित्र बनाए गए। इन ठिकाणों और रियासतों के नाम पर यहाँ की शैलियों का नामकरण हुआ। जैसे राजस्थान के मेवाड़ अंचल में, उदयपुर, नाथद्वारा, देवगढ़, सांवर, शाहपुरा बनेड़ा, बागौर, बेगूँ, मारवाड़ में जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, नागौर, अजमेर, जैसलमेर, घांणेराव, रियाँ, भिनाय तथा जूनिया, हाड़ौती अंचल में कोटा, बूँदी, झालावाड़ और ढूँढार अंचल में आमेर, जयपुर, शेखावटी, अलवर, उनियारा, झिलाय, इसरदा और सामोद।

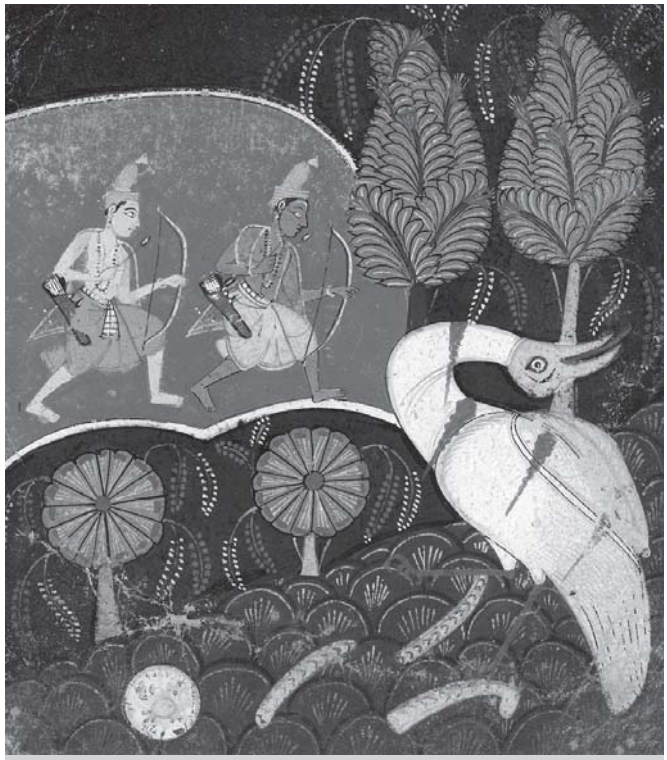

राम तथा लक्ष्मण -मृत होते जटायु को देखते- 17 वीं सदी मालवा

हिमांचल प्रदेश में कांगड़ा, बसोहली, गुलेर, मण्डी, चम्बा, मानकोट, हिन्दूर, नूरपुर, बिलासपुर, गढ़वाल, कुल्लू और बाहू जैसे स्थानों में काफी लघुचित्र बने और सचित्र ग्रंथ भी चित्रित हुए। लघुचित्रों के अंकन का एक आन्दोलन सा चला पूरे देश में फिर वह चाहे आसाम हो, बंगाल का कालीघाट या कश्मीर घाटी में जम्मू और श्रीनगर।

इस परिप्रेक्ष्य में यह जानना बड़ा रोचक होगा कि मध्यकाल में बल्कि इससे काफी पूर्व भी मालवा में चित्रांकन की समृद्ध परंपरा रही किन्तु इसके संबंध में कोई विशेष कार्य नहीं हुआ। और यही कारण है कि मालवा में नरसिंहगढ़ से लेकर माण्डू और राघोगढ़ से लेकर जावद तक निरंतर चित्रांकन की परंपरा फलती-फूलती रही लेकिन उसके बारे में सजगता केवल चितेरों तक सीमित होकर रह गई और यही कारण है कि लोक शैली के समानांतर जो लघुचित्रों के अंकन की परंपरा फूली-फली उसके संबंध में शैलीगत नामकरण उस तरह नहीं हुआ जिस तरह राजस्थान और हिमांचल प्रदेश में हुआ। यह भी एक आश्चर्य जनक तथ्य है कि मालवा शैली या मालवा क़लम पर वैसा शोध कार्य मालवा में ही नहीं हुआ जैसा पहाड़ों और राजस्थान में हुआ। स्व. डॉ. वाकणकर जैसे अपवाद साधक मालवा में बिरले ही रहे हैं। स्व. राय कृष्णदासजी ने मालवा क़लम पर कार्य किया और बनारस कला भवन में मालवा शैली के महत्वपूर्ण चित्र इकट्ठे किये। उनके यशस्वी पुत्र राय आनंदकृष्ण ने मालवा पेंटिंग नामक अपनी प्रसिद्ध कृति 1963 में लिखी और हाल ही में वर्जीनिया म्यूज़ियम ऑफ फाइन ऑर्ट के निदेशक जोसेफ एम. डाई थर्ड के द्वारा 1980 में मालवा क़लम पर लिखी गई शोध कृति विक्टोरिया एण्ड एल्बर्ट म्यूज़ियम, लंदन में देखने को मिली। यों डॉ. आनंद कुमार स्वामी, डॉ. ओसी गांगुली, अदरीस बेनर्जी, रॉबर्ट स्केल्टन और डॉ. दलजीत से लेकर रतलाम के कलाविद डॉ. दुर्गा शर्मा तक ने मालवा शैली पर काम किया लेकिन अभी भी अपनी विशिष्ट मौलिकता के बावजूद मालवा क़लम की अपनी उचित पहचान नहीं बन पाई है। पूरी एक सदी बीती लेकिन वह कार्य नहीं हो पाया जो पहाड़ों और राजस्थान में हुआ है।

मालवा की चित्रांकन परंपरा अद्‌भुत है। उसका कोई सानी नहीं क्योंकि मालवा क़लम के चित्रों से प्रेरणा मेवाड़ जैसी पुरानी क़लम ने ली है और मालवा क़लम का अपना ऐसा निजस्व है जो किसी दूसरी शैली में नहीं है। मालवा की सीमाएं समय-समय पर बदलती रही हैं। कदम-कदम पर रोटी और पानी को उपलब्ध कराने वाली यह गहन, गंभीर धरती कला की दृष्टि से बड़ी सम्पन्न रही है। चम्बल, बेतवा और नर्मदा से घिरी इस उर्वर धरती ने कला की शानदार परंपराएं चाहे वे स्थापत्य की हों या चित्रांकन की, स्थापित की हैं।

प्राचीन मालवा में मौर्य, शुंग, शक तथा सातवाहन कालो में कला परंपराएं विकसित हुईं। स्तूप, चैत्य, विहार, शैलकृत गुफाएं और देवालय निर्मित किए गए। परमार कालीन शासकों की रचनात्मक प्रतिभा के उदाहरण उदयपुर, ग्यारसपुर, नेमावर, बदनावर, विदिशा, ऊन, भोजपुर तथा उज्जैन में मिलती है। इस कला में श्री लक्ष्मी को यक्षी के रूप में उकेरा गया है तथा श्रीवृक्ष भी उत्कीर्ण किया गया है। शुंगकाल में सांची के स्तूप और तोरण बनाए गए जिन पर हीनयानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। छत्र, भिक्षापात्र, पदचिन्ह, स्वस्तिक, त्रिरत्न, बोधिवृक्ष, बोधिमण्डल तथा वज्रासन प्रतीक रूप में उत्कीर्ण किये गए हैं। कसरावद के उत्खनन में विहारों से प्राप्त पात्रों पर उत्कीर्ण घंटों के नीचे सूर्य का प्रतीक उत्कीर्ण किया गया है तथा मालवा से मिली अधिकांश मुद्राओं पर सूर्य उत्कीर्ण है। सूर्य अंकन परब्रह्म के रूप में विभिन्न प्रकारों उत्कीर्ण किया गया है। धार के महान् राजा भोज ने समरांगण सूत्राधार नामक प्रसिद्ध ग्रंथ ललित कलाओं को केन्द्र में रखकर रचा।

मालवा के स्थापत्य और मूर्तिशिल्पों के निर्माण की अपनी एक अलग कहानी है, जहाँ तक चित्रांकन का प्रश्न है, कालिदास, बाणभट्ट, शूद्रक, परमगुप्त, परिमल तथा चतुर्भाणी के ग्रंथों में इसके विस्तृत उल्लेख मिलते हैं। 5वीं से 6वीं शताब्दी के बीच कुक्षी के पास बनी बाघ की गुफाओं के भित्तिचित्र विश्व विख्यात हैं। ये अजंता की परंपरा में बनाए गए भित्तिचित्र हैं जो अब प्रायः नष्ट हो गए हैं। मुंह ढांपकर रोती हुई स्त्री तथा समूह नृत्य के बेजोड़

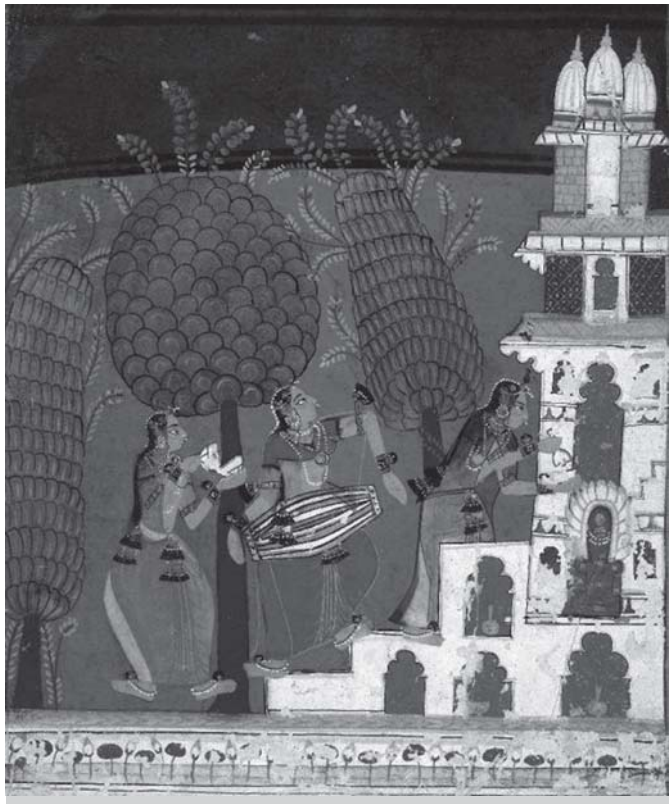

मालव राग -1640 ईस्वी-मालवा शैली

भित्तिचित्र तथा वहाँ उरेही गई कल्पवल्लियाँ जो भरहुत कला में भी उरेही गईं, मालवा की चित्रांकन परंपरा के उत्कर्ष को प्रमाणित करती हैं।

परमार काल में चित्रकला का निसंदेह काफी विकास हुआ होगा लेकिन उसके प्रमाण उपलब्ध नहीं है। 14वीं 15वीं शताब्दी में जब माण्डू जिसका पूर्व नाम मण्डपगढ़ था, गोरी और ख़िल्ज़ी सुल्तानों के आधिपत्य में आया और वह उनकी राजधानी बना तब चित्रकला का अच्छा विकास हुआ और एक मौलिक मालवा क़लम जन्मी। पूर्वी मध्यप्रदेश में चंदेरी और पश्चिम में माण्डू जैनियों के प्रमुख केन्द्र थे। माण्डू श्वेताम्बर जैनियों का केन्द्र था। वे इन मुसलमान शासकों के विश्वासपात्र तो थे ही उन्हें आर्थिक मदद भी करते थे जिसके कारण उन्हें इन शासकों का पूरा संरक्षण मिला। इसका लाभ लेकर उन्होंने अपनी परंपरा के अनुसार जैन शास्त्रों के सुन्दर अंकन कराए। माण्डू में प्रसिद्ध कल्पसूत्र सन् 1439 में बना। यह अभी ब्रिटिश म्यूज़ियम लंदन में है तथा सन् 1959 में डॉ. रॉबर्ट स्केल्टन ने इसकी खोज कर इस पर विस्तृत शोध कार्य किया था। इस ग्रंथ में जैन धर्म का विवरण देते हुए मनुष्य, पशु-पक्षी और देवी देवताओं के चित्र बनाए गए हैं। चित्रांकन की इस शैली पर ईरान की हेरात और शिराज़ की तुर्कमान शैली का प्रभाव तो दिखाई देता है लेकिन मनुष्य आकृतियों पर पूरा मालवी प्रभाव है। महिलाओं के वस्त्र और आभूषण और उनकी कद-काठी मालवी महिला की है। माण्डू में ही अमरूकशतक नामक सातवीं सदी का संस्कृत ग्रंथ चित्रित हुआ। इसके अलावा नियामतनामा नामक एक सचित्र ग्रंथ बनाया गया जिसमें भारतीय व्यंजनों के बनाए जाने की विधि अंकित की गई है। माण्डू में हम्ज़ानामा और दुर्गापथ नामक सचित्र ग्रंथ भी गयास खिल्जी के समय क्रमश: 1475 तथा 1487 ई. में बने। अमरूक शतक के चित्र भारत में छत्रपति शिवाजी संग्रहाल, मुंबई में रखे हैं। शेष ग्रंथ अब भारत में नहीं है। माण्डू में बने नियामतनामा तथा इसकी चित्रांकन परंपरा पर इन्दौर के ही प्रसिद्ध संस्कृतिविद् डॉ. शशिकांत भट्ट ने एक महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया है।

मालवा क़लम पर जो जैन प्रभाव था वह काफी पुराना था। नवमीं दसवीं शताब्दी से पश्चिम भारत में विशेषकर गुजरात में जो शैली पनपी और जिसे पश्चिमोत्तर गुजरात शैली के नाम से प्राय: जाना जाता है उसका प्रभाव मालवा के जैन चितेरों पर था। वर्गाकार सिर, बड़ी आँखें, घूँघट और अलंकृत पृष्ठभूमि में बनाए गए चित्र मालवा शैली के आरंभिक चित्रों की विशेषता रहे हैं। मालवा में सन् 1630 से 1700 ई. के बीच राग-रागनियों पर आधारित काफी चित्र बने जो अभी फाइन ऑर्ट म्यूज़ियम बोस्टन और भारत कला भवन, बनारस में विशेष रूप से रखे हैं।

यह जानना भी बड़ा दिलचस्प होगा कि सन् 1680 के आस-पास नरसिंहगढ़ में एक महान कला आन्दोलन का जन्म हुआ। वहाँ माधोदास नामक एक प्रख्यात चितेरा हुआ जिसका अपना एक कलाकारों का समूह था। माधोदास ने राग और रागनियों के शानदार चित्र सन् 1680 ई. में बनाए। इन चित्रों में पुरूष, जामा या धोती पहने हुए हैं और महिलाएं विशेष किस्म के लहंगे। मालवी परिवेश इन चित्रों में स्पष्ट दिखाई देता है। रागमाला के ये चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संरक्षित है। इसी समय में नायक नायिका भेद के चित्र भी मालवा क़लम में बहुत बने। मालवा शैली में रची गई यह नायिका राजस्थान और पहाड़ की शैलियों में रची गई नायिकाओं की तरह कोमल नहीं है, उसकी देह यष्टि और भाव भंगिमा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह सीधे खलिहान से नृत्य में शामिल होने आ गई हों। उसका तेजस्वी सौन्दर्य उसे किशनगढ़ और कांगड़ा के अंकनों से अलग करता है। दुर्भाग्य से बहुत कोशिश करने पर भी नरसिंहगढ़ में ऐसे अब कोई चित्र नहीं मिल पाए हैं लेकिन नरसिंहगढ़ में माधोदास और उसके शिष्यों की चित्रांकन परंपरा के आगे बढ़ने के कुछ प्रमाण अभी भी मौजूद हैं। नरसिंहगढ़ के दो मंदिरों में जिन्हें कंवरानी मंदिर तथा चम्पावती मंदिर कहा जाता है की दीवारों पर भित्तिचित्र हैं। ऐसा लगता है कि सन् 1681 में जब राजा परसराम ने नरसिंहगढ़ को बसाया उसी समय के आस-पास के ये चित्र होने चाहिए। उनकी मृत्यु सन् 1695 में हुई।

कंवरानीमंदिर की दीवारों पर बने यद्यपि अधिकांश चित्र नष्ट हो गए हैं लेकिन मंदिर की गोलाकार छत पर बने कृष्ण लीला के चित्र सुरक्षित हैं। इन चित्रों में किले की दीवारें, खुले हुए झरोखे आदि दिखाई देते हैं। यहाँ युद्ध दृश्य भी बने हुए हैं। इन चित्रों पर मेवाड़, कोटा और मुग़ल क़लम का प्रभाव दिखाई देता है। मालवी अंगरखे और पगड़ी का अंकन विशिष्ट है। इसी तरह चम्पावती मंदिर में बने हुए चित्र भी मालवा क़लम का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये चित्र कुछ बाद के काल के चित्र हैं लेकिन इनके अंकन में पुरानी परंपरा मौजूद हैं। यहाँ भगवान विष्णु तथा लक्ष्मी, शेषशायी विष्णु तथा शंकर परिवार को चित्रित किया गया है। भगवान शंकर की जटाओं से बहती गंगा का प्रवाह बड़ा सुन्दर है। राम दरबार का भी अंकन किया गया है।

इस तरह यह स्पष्ट होता है कि सोलहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच पूर्वी और पश्चिमी मालवा में चित्रांकन की अपनी परंपरा

रही है। इसके बाद के काल में भी यद्यपि यह परंपरा विद्यमान रही लेकिन इसकी कलात्मकता धीरे-धीरे समाप्त होती गई। इसका उदाहरण पूर्वी मध्यप्रदेश में नरसिंहगढ़ से 20 कि.मी. दूर बसे साकाश्यामजी नामक गाँव में स्थित समाधि के अंकन हैं। यहाँ एक सामासिक शैली दिखाई देती है। ये चित्र अट्ठारवही शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हैं। अभिलेख के अनुसार सन् 1787-1788 ई. में यह जागीर रावत पर्वतसिंह ने भगली पण्डी नामक एक राजपूत स्त्री को दी थी जिसने अपने पति की स्मृति में ये चित्र बनवाए। बाँसुरी बजाते कृष्ण रैदास के सामने बैठी मीरा, गजलक्ष्मी, जैन संत, ढोलामारू, पहलवान, योद्धा और समुद्र मंथन के अंकन बड़े प्रसिद्ध हैं। ऐसा लगता है कि ये चित्र यात्रा करने वाले चित्रकारों को अनुबंधित कर तैयार करवाए गए होंगे क्योंकि इन पर मुगल तथा ब्रिटिश प्रभाव भी दिखाई देता है। गुना के पास ही बजरंग गढ़ के जैन मंदिर में जैन विषयों पर किये गए सुन्दर अंकन दीवारों पर हैं जो यद्यपि धूमिल हो गए हैं किन्तु जिन पर मालवी प्रभाव बड़ा स्पष्ट है।

नरसिंहगढ़ से लगी हुई एक रियासत राघोगढ़ रही जो कोटा के दक्षिण में है। इस पर बूँदी, कोटा और राजस्थान की अन्य क़लमों का तथा मुगल क़लम का प्रभाव होते हुए भी, इसकी अपनी मौलिक विशेषता है। राघोगढ़ के राजा धीरजसिंह (1697-1726 ई.) के समय में यहाँ की चित्रांकन परंपरा ने अपना उत्कर्ष पाया। प्रसिद्ध कलाविद् स्टुवर्ड केरिवेल्श और श्री जगदीश मित्तल का मत है कि राघोगढ़ की चित्र शैली मुग़ल शैली के प्रभाव से मुक्त थी। वह लोक से जुड़ी हुई थी और वहाँ के शासकों के पास सीमित साधन थे, वे आस-पास के राज्यों से सुरक्षित भी नहीं थे लेकिन इसके बावजूद उन्होंने स्थानीय चितेरों को लगभग 200 बरस तक प्रश्रय दिया और एक मौलिक क़लम की पहचान बनाई रखी। इतने लम्बे अर्से तक एक चित्र शैली की मौलिकता को बनाए रखने का श्रेय नि:संदेह इस क़लम को है। राघोगढ़ क़लम में अनेकों विषयों पर चित्र बने जिनमें युद्ध दृश्य, शिकार दृश्य तथा कृष्ण लीला के अंकन महत्वपूर्ण हैं। एक चित्र में राजा धीरज सिंह माला फेर रहे हैं और उनके सामने एक बना हुआ चित्र तथा चित्रांकन की सामग्री मौजूद है। राघोगढ़ के खीची राजा, भगवान राम के उपासक थे इसलिए राम दरबार के सुन्दर अंकन इस क़लम में हुए हैं। गजलक्ष्मी, इन्द्राणी, दैत्यों का संहार करती हुई दुर्गा, शिव पार्वती, भृंगी ऋषि, उषा-अनिरूद्ध, चित्रलेखा, गणेश और राजा बाणासुर के भी चित्र बनाए गए हैं। राघोगढ़ के संस्थापक राजा लालसिंह से लेकर राजा जयमंडल सिंह तक की सुन्दर सबीहें इस क़लम में बनाई गई है। इन राजाओं के

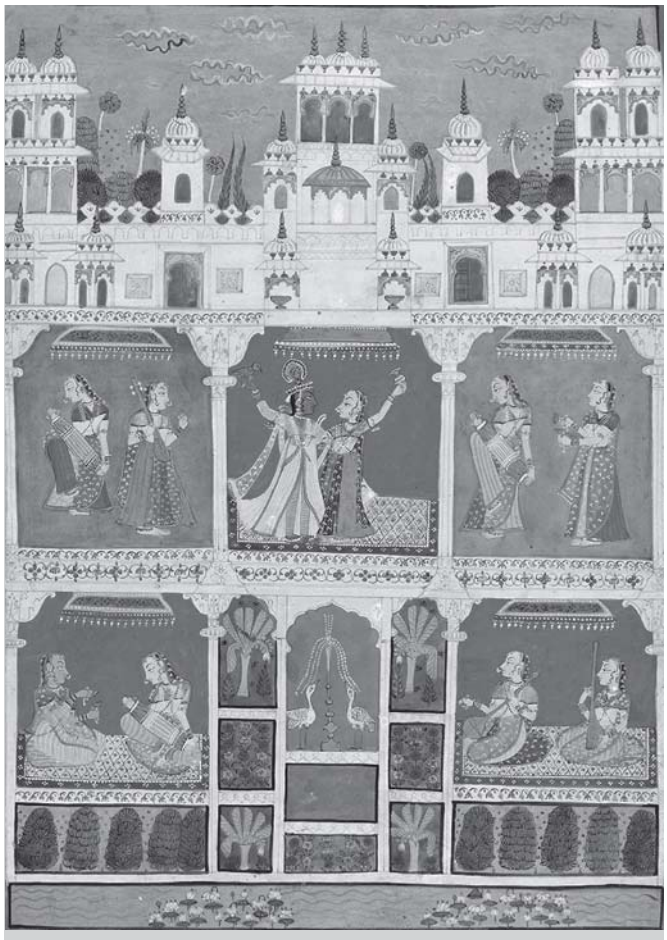

नृत्यरत राधा कृष्ण 18 वीं सदी मालवा शैली

समय में धीरपुर ग्राम में चतुर्भुज मंदिर की दीवारों पर सुन्दर चित्र बने। ये भित्तिचित्र अभी भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मौजूद हैं। इन चित्रों की सबसे बड़ी खासियत है यहाँ की स्थानीयता तथा प्रकृति का सहज चित्रण। चित्र प्राय: हल्की हरे रंग की पृष्ठभूमि में बनाए गए हैं। स्थानीय चितेरों ने यहाँ के लोक प्रभाव और प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने विशेष अनुपात में ढालकर ऐसे चित्र बनाए जो तमाम राजपूत और पहाड़ी शैलियों से भिन्न चित्र हैं और अपने अनूठेपन के कारण विश्व भर के प्रमुख संग्रहालयों में रखे हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली, जगदीश मित्तल एवं कमला मित्तल संग्रहालय, हैदराबाद, विक्टोरिया एण्ड एल्बर्ट म्यूज़ियम, सेन्सीबरी म्यूज़ियम लंदन, चेस्टर बेट्टी लाइब्रेरी, डबलिन, बोस्टन म्यूज़ियम, ब्रकलिन म्यूज़ियम अमेरिका आदि में ये चित्र हैं। अनेकों व्यक्तिगत संग्रहों में भी राघोगढ़ क़लम के चित्र हैं जिन्हें मैं देख पाया हूँ। राघोगढ़ की चित्रांकन परंपरा प्राय: 18वीं सदी के अंत तक चली।

नरसिंहगढ़ और राघोगढ़ के अलावा चंदरी में भी यह परंपरा

रही है लेकिन उसके उदाहरण नहीं मिलते हैं।

पश्चिमी मालवा में पूर्वी मालवा की तुलना में इस चित्रांकन परंपरा के उदाहरण अधिक और निरंतर मिलते हैं। देवास, उज्जैन, इन्दौर, धार माण्डू, रतलाम, मंदसौर, नीमच, जावद तथा छोटे से ठिकाणे पीपलियाराव में इस शैली के उदाहरण मिलते हैं। इन स्थानों पर अनेकों हवेलियों और मंदिरों में भित्तिचित्र भी हैं और लघुचित्र भी मिले हैं जो यहाँ-वहाँ संग्रहीत हैं। पश्चिमी मालवा में जो लघुचित्र स्फुट रूप से बने और जो सचित्र ग्रंथ बने वे अब यहाँ नहीं है। वे या तो देश के और विदेशों के संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहों अथवा कला वीथिकाओं में है या प्राय: नष्ट हो गए हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में रतलाम क़लम का एक लघुचित्र संरक्षित है जो 18वीं सदी का है। कहा जाता है कि जहाँगीर जब नूरजहाँ के साथ माण्डू आया था तब वह अपने साथ गोवर्धन नामक एक चितेरे को भी लाया था जिसने माण्डू की प्राकृतिक सुषमा को स्थानीय लोक प्रभाव के माध्यम से अपने चित्रों में उरेहा।

महेश्वर के मंदिर में राधा-कृष्ण के सात लघुचित्र काफी पहले प्राप्त हुए थे जो उत्तर मध्यकाल के हैं। इनमें राधा के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें उन्हें मराठी वेष-भूषा में दर्शाया गया है। हरगोविन्द नामक चितेरे के द्वारा सन् 1832 ई. में बनाए गए मंसूर बिन सलेम के पाँच व्यक्तिचित्र मुझे एक व्यक्तिगत संग्रह में देखने को मिले जिन पर मुग़ल प्रभाव स्पष्ट है। धार के पुष्टिमार्गी मंदिरों में उत्तर मध्यकाल के नाथद्वारा शैली के चित्र हैं जो संभवत: धार में ही बने होंगे क्योंकि इन पर मराठा प्रभाव बड़ा स्पष्ट है। धार में मुख्य रूप से वल्लभ सम्प्रदाय के तीन मंदिर हैं। इनमें से एक मंदिर श्री गोवर्धननाथ जी का मंदिर है जिसमें अनेकों लघुचित्र हैं। एक चित्र में पुराणिकजी (शास्त्रीजी) को मराठी पगड़ी पहने दर्शाया गया है। मदन-मोहन जी के मंदिर में जमुनाजी का और बालकृष्ण जी के मंदिर में जिसे दाईजी का मंदिर भी कहा जाता है उसमें झूला दृश्य का एक सुन्दर लघुचित्र है।

उज्जैन में मिले लघुचित्र 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा 19वीं शताब्दी में बनाए गए हैं, वे व्यक्तिगत संग्रहों में मौजूद हैं। जो लघुचित्र मैं देख पाया वे 17वीं से 18वीं सदी के बीच बनाए गए मालवा क़लम के लघुचित्र हैं तथा राग-रागनियों पर बनाए गए हैं। उज्जैन ज्योतिष एक प्रसिद्ध केन्द्र था इसलिए वहाँ सचित्र पत्रिकाएं तथा ज्योतिष विषयों पर बनाए चित्र मिले हैं। सिंधिया ओरियेन्टल इन्सटिट्यूट में जो स्फुट लघुचित्र तथा सचित्र ग्रंथ रखे हैं उनमें कई लघुचित्र ऐसे हैं जिन पर बूँदी शैली का प्रभाव है। ये चित्र अधिकतर दशावतार के हैं तथा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनाए गए हैं। इनके अलावा श्रीमद् भागवत, गीत-गोविन्द, कल्पसूत्र तथा स्त्रोत संग्रह जैसे सचित्र ग्रंथ हैं जिन पर मराठा प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ श्रीमद् भागवत है। इसमें 137 चित्र हैं जो संभवत: सन् 1841 में बनाए गए। विक्टोरिया एण्ड एल्बर्ट म्यूज़ियम लंदन तथा वर्जीनिया म्यूज़ियम ऑफ फाइन ऑर्टस में इस समन्वित शैली के चित्र रखे हुए हैं। गीत-गोविन्द के छ: चित्र हैं। इन चित्रों की विशेषता यह है कि इन पर मालवा की लोक शैली का प्रभाव है। ये चित्र 18वीं सदी के उत्तर काल में बने हैं। यहाँ रखा कल्पसूत्र भी सन् 1809 का है जिसे मंदसौर के श्री पन्नालालजी जति ने संस्थान को दान किया था इस पर मालवा और मेवाड़ शैली का समन्वित प्रभाव है। देवास में शानदार व्यक्तिचित्र वहाँ के शासकों के बने जो 19वीं सदी के हैं। जावद में बनाए गए 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध के दो सचित्र ग्रंथ भी देखने को मिले हैं जो ढोलामारू तथा लौरचंदा हैं। मंदसौर के पास सीतामऊ एक प्रसिद्ध स्टेट थी। यहाँ चित्रांकन की एक विशिष्ट मालवी शैली 17वीं-18वीं शताब्दी में पनपी। दुर्भाग्य से अब सीतामऊ में इस शैली के कोई चित्र शेष नहीं है। स्व.डॉ. रघुवीर सिंह जी ने नटनागर शोध संस्थान की स्थापना की तथा वहाँ इन लघुचित्रों को रखा लेकिन दुर्भाग्य से ये सभी चित्र चोरी हो गए। वहाँ सरूपराम नामक चितेरे ने विशेष रूप से राग-रागनियों के चित्र मालवा क़लम में बनाए थे। मुझे एशमॉलियन म्यूज़ियम ऑक्सफोर्ड में सरूपराम का रागिनी का बनाया चित्र देखने को मिला है। सीतामऊ में बने इस शैली के चित्र व्यक्तिगत संग्रहों में हैं।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, समूचे मालवा में बजरंग गढ़ से लेकर नीमच के पास पीपलियाराव तक भित्तिचित्र मिलते हैं। ये चित्र यद्यपि बहुत बाद के चित्र हैं अर्थात् 19वीं सदी के चित्र हैं लेकिन ये मालवा क़लम की उस परंपरा का भलिभांति निर्वाह करते हैं जो 14वीं-15वीं शताब्दी से लेकर विभिन्न युगों में अपनी निरंतरता बरक़रार रखती रही।

इन्दौर में राजबाड़ा की भित्तियों पर बने चित्र अब प्राय: नष्ट प्राय: है लेकिन राजबाड़ा के आस पास पुराने मंदिरों और पुराने घरों में ये चित्र दिखाई देते हैं। देवास के चरणदास मंदिर में बनाए गए कृष्णलीला के चित्र अब नष्ट हो गए हैं इसी तरह सीनियर स्टेट राजबाड़ा के चित्र भी अब दिखाई नहीं देते। रतलाम में कोटावाले बाफ्ना की हवेली, शांतिलालजी बागिया की हवेली और बाज़ार में बड़े बाबाजी के मंदिर तथा एक और जैन मंदिर में बने भित्तिचित्र मालवा शैली की महान् परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं। बड़े

बाबाजी के मंदिर में अब केवल एक पैनल शेष है जिस पर किया गया सुन्दर अंकन मेवाड़ शैली से प्रभावित है। इस क्षेत्र का यह प्रतिनिधि अंकन कहा जा सकता है। वहाँ के एक और मंदिर में कृष्णलीला के सुन्दर अंकन भित्तियों पर उरेहे गए हैं। मंदसौर में सागरमलजी पोरवाल की हवेली में अभी कुछ चित्र शेष हैं। दो और हवेलियों मे भित्तिचित्र हैं जो काफी बाद के समय के हैं। इन चित्रों पर राजा रविवर्मा की शैली का प्रभाव भी दिखाई देता है। यहाँ की एक हवेली की मियाल पर राग-रागिनियों के सुन्दर अंकन थे लेकिन अब वह विलुप्त हो गई है।

उज्जैन में राम जनार्दन मंदिर, तिलकेश्वर मंदिर, चिटणीस मंदिर तथा सत्यनारायण मंदिर में कृष्णलीला तथा विभिन्न अन्य धार्मिक विषयों पर केन्द्रित अंकन है। धार के वैष्णव मंदिरों कृष्ण लीला के तथा माण्डू में बनी गदाशाह की दुकान में चंदेरी के मेदनी राय का व्यक्तिचित्र भी बना हुआ है।

ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो ये सिद्ध करते हैं कि मालवा के बाघ अंचल में जिस रेखा ने जन्म लिया और जिसका विकास हुआ वह कभी विलुप्त नहीं हुई बल्की रंगों और रेखाओं के माध्यम से अपने आप को अभिव्यक्त करती रही। मालवा क़लम में रागमाला के चित्रों से लेकर केशव की रसिकप्रिया, कविप्रिया और पुहकर की रसबेली से लेकर मतीराम के रसराज और अष्टयाम पर आधारित चित्र बने। मध्यकाल में जितनी भी प्रमुख शैलियों में जिन विषयों पर चित्र बने उन सभी विषयों पर मालवा क़लम के चितेरे ने अपनी तूलिका से उन्हें रंगों और रेखाओं में बाँधा है। रामायण से लेकर गीत-गोविन्द और नायक-नायिका भेद पर केन्द्रित प्रसंगों को यहाँ के चितेरों ने अपनी क़लम से उरेहा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन चितेरों ने कभी भी अपनी प्रसिद्धि की आकांक्षा नहीं रखी इसलिए मालवा शैली के लघुचित्रों पर या पोथियों पर इनके नाम प्राय: नहीं मिलते। आस्थाभाव से भरपूर ये चितेरे केवल प्रभु के प्रति प्रतिबद्ध थे और उसी के प्रति उनका समर्पण था। यह भी सही है कि ज्यादातर चित्र राजाओं के संरक्षण में बने इसलिए अपने समय के सामान्य जनजीवन का चित्रण इन चित्रों में बहुत कम है लेकिन यह भी सही है कि दूसरी शैलियों की तुलना में मालवा के चितेरे ने अपने आस-पास के लोक को उरेहने की कोशिश की है और इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते भी हैं।

मालवा की चित्रांकन परंपरा देश की अन्य चित्र शैलियों की परंपरा की तुलना में पुरानी है। एक रोचक संदर्भ तो यह मिलता है कि शाजापुर के पास नलखेड़ा में एक श्रेणिक अपने एक ग्रंथ को सचित्र करवाने मेवाड़ से नलखेड़ा 13वीं सदी में आया था। बंगाल की चित्रकला पर भी मालवा के प्रभाव को पाया जा सकता है। मालवा की चित्रांकन परंपरा का प्रभाव अपने आस-पास के क्षेत्रों की शैलियों पर भी पड़ा। बुन्देलखण्ड, विदर्भ, और खानदेश जैसे अंचलों में मालवा की चित्रांकन परंपरा के प्रभाव से लघुचित्र और सचित्र ग्रंथ बने। यह एक संक्षिप्त झांकी है मालवा क़लम के विकास की और कुछ चुनिंदा उदाहरणों की। यह ऐसी उस महान् विरासत की झांकी है जो विरासत विस्मरण करने के लिए नहीं है, बल्कि यह सिद्ध करने के लिए है कि धरोहर अतीत की थाती नहीं होती, भविष्य की प्रेरणा होती है।

- लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, पुराने आर.टी.ओ. ऑफिस के पास,
केसरबाग रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.), मो.: 9425092893

कला समय

आगामी अंक
अक्टूबर-नवम्बर 2022

अक्षर ब्रह्म विशेषांक

विशेषांक हेतु आलेख, रचनाएँ, छायाचित्र आमंत्रित है।

अतिथि संपादक
डॉ. श्यामसुंदर दुबे

आदिशंकर के अद्वैत में शक्ति और माया का अद्वय

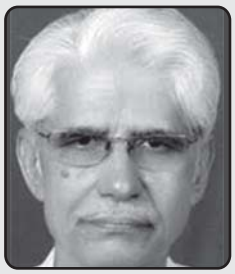

प्रभुदयाल मिश्र

सत्य को जानने की वेद मूलक कर्म, उपासना और ज्ञान की धाराओं से आरंभ भारतीय मेधा निरंतर ज्ञान की अतल गहराइयों में प्रविष्ट होती गई है। षड्दर्शन (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, कर्म, वेदान्त और योग) की लोकसिद्ध दिशाओं ने इस अन्वेषण को नूतन क्षितिज प्रदान किए। किन्तु अध्यात्म की यदि एक सार्वकालिक मुख्य धारा की पहचान की जानी है तो वह वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण और संहिता से बहती हुई भारतीय जीवन, व्यवहार, विश्वास, धारणा और दर्शन की संपूर्णता में ही अवस्थित और स्थित है। भगवान विष्णु के नाना अवतार, शिव की संहार लीला, देवी का रक्षा विधान, हनुमान की कलि को चुनौती, स्वामीकार्तिक का दानव दलन और गणेश का विघ्नहरण इसी निष्ठा के विस्तार हैं। इससे इतना समझा जाना आसान हो जाता है कि गुरुकुल और अरण्य में एक ब्रह्मचारी या राजा के उत्तराधिकारी ने कितना ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया हो, लोक में आकर वह अपने ज्ञान को व्यवहार के धरातल पर प्रतिष्ठित कर यज्ञ, अनुष्ठान, धर्म संसद, पूजा स्थल, संस्कृति और शिक्षा केन्द्रों से इसे तदाकार देखता और इसके अनुसरण की लोक स्वीकार्य सरणियाँ निर्मित करता था।

आदिशंकर का प्रादुर्भाव उस काल में हुआ जब भारतीय जीवन में ज्ञान और व्यवहार की खाई बहुत चौड़ी हो गई थी। ज्ञान के पलायन, कर्मकांड के अतिरेक और सामाजिक जीवन में विखंडन ने जैन और बौद्ध दर्शन की सरणियों में दिशा परिवर्तन देखा किन्तु सनातन प्रवाह के अवरुद्ध होने की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती थी। अत: आदिशंकर का आविर्भाव काल की इसी निरंतरता की प्रतिष्ठा थी जो जीवन का अस्तित्व बोध कराती रहती है। जिन्होने अपनी 32 वर्ष की आयु में अखंड भारत की एक छोर से दूसरे छोर तक लगातार यात्राओं, चार पीठों की स्थापना के बाद प्रस्थानत्रयी ग्रन्थों के 16 भाष्य, वेदान्त दर्शन के 20 सिद्धान्त ग्रंथ और उपासना प्रधान 22 स्तोत्र शास्त्र रचे हों वे कितने असामान्य और विराट पुरुष थे, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। और इस प्रकार यदि यह कहा जाता है कि वाल्मीकि, व्यास और शुकदेव की ज्ञान परंपरा में यदि किसी वर्तमान इतिहास के महामानव को प्रतिष्ठित किया जाना है तो वे केवल आदिशंकर ही हो सकते हैं।

यह प्रश्न उठाया जाता है कि आदिशंकर ने वेदों के संहिता भाग का कोई भाष्य नहीं किया तथा जहां भी उन्होंने श्रुति प्रमाण की बात की है तो उनका आशय उपनिषदों से रहा है। इन उपनिषदों में भी ईशादि 9 उपनिषद् ही प्रधान हैं जिनका कि उन्होने भाष्य भी किया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के भाष्य भी वेदान्त परक ही हैं क्योंकि उन्हें श्लोकार्ध –

ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रंह्ममेव नापरः

जीव और ब्रह्म की अभेदता और माया के मिथ्यात्व के सिद्धांत की संस्थापना ही अभीष्ट थी। किन्तु इसकी पृष्ठभूमि में उनकी युगीन भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वे यह भी जानते थे कि वेद ज्ञान के अगाध समुद्र हैं जो अपनी गूढ़ता-खारेपन में यथारूप जनसामान्य के लिए ग्राह्य नहीं हो सकते। जिस प्रकार समुद्र के जल को मेघ उड़ाकर मीठा बनाते हैं ठीक वैसे ही उत्तरवर्ती शास्त्र और शास्त्रवेत्ता उन्हें धारणा और व्यवहार के योग्य बनाते हैं। पौराणिक और प्राचीन काल में वेदों के उत्तरवर्ती ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा विस्तारित यज्ञ विधि के कर्मकांड पक्ष का व्यापक प्रवर्तन हुआ किन्तु कालांतर में इसका सम्यक निर्वाह सुलभ न होने से विकृतियां आ रही थीं, अत: अध्येताओं में ज्ञान और लोक व्यवहार में उपासना की वरेण्यता की स्थापना के लिए आदिशंकर के भाष्य, सिद्धान्त ग्रंथ और स्तोत्र सभी की सार्वकालिक और सार्वलौकिक प्रासांगिकता स्वयं सिद्ध रही है।

यह एक आश्चर्य ही है कि महाभारत का अंश भगवद्गीता भगवान वेदव्यास द्वारा सुपूर्व प्रकट की जा चुकी थी और महाभारत में वे यह भी लिख चुके थे कि इतिहास (रामायण-महाभारत) और पुराण से वेदार्थ ग्रहण किया जाना चाहिए-

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत।

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यतीति।।

हम देखते हैं कि कृष्ण ने किस प्रकार पर्याप्त पूर्व यज्ञ को कर्मकांड से ऊपर ले जा कर ज्ञान में प्रतिष्ठित कर दिया था–

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञानयज्ञः परंतप (गीता 4/33)

अपने गीता के ज्ञान परक भाष्य द्वारा इसका रेखांकन जैसे तत्समय आदिशंकर को आवश्यक था जो उस समया लोक मानस से कहीं विच्छिन्न हो रहा था। किन्तु जहां उन्हें पुराण के पुनर्पाठ की आवश्यकता नहीं थी वहीं शक्ति के सभी केंद्र– गणेश, अन्नपूर्णा, कालभैरव, दक्षिणामूर्ति, कनकधारा, आद्याशक्ति, शिव, गोविंद आदि देवों का आह्लादिक स्तवन समसामयिक और अपने आविर्भाव के उद्देश्य के अनुरूप था ।

आदिशंकर के 'जगन्मिथ्या' कथन में 'मिथ्या' प्रयोग को विद्वानों ने प्रायः 'माया' का पर्याय मानकर शंकर के 'मायावाद' पर विचार (अतिरेक की सीमा तक) किया और परवर्ती दर्शन के क्षेत्र में अनेक धाराओं जैसे अभिनवगुप्त की विश्वात्मिका विश्वोत्तीर्णा विमर्श शक्ति, रामानुजाचार्य, रामानन्द, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बकाचार्य आदि की नित्यलीला सम्पन्ना जगद्धात्री राधा या सीता आदि रूपों में लोक की भक्ति और शक्ति के रूप में यह सुप्रतिष्ठित हुई। किन्तु जब हम आदिशंकर के सिद्धान्त पक्ष की ओर मुड़कर देखते हैं तो उनके दर्शन के शीर्ष ग्रंथ 'विवेकचूड़ामणि' जो माया की सुस्पष्ट परिभाषा पाते हैं वह यह है–

अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्तिर्नाविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेयासुधियैव माया यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते।
विवेकचूड़ामणि, 110.

परमात्मा की समकक्षा में सृष्टि निर्माणकर्त्री इस माया को आगे शंकर सत् और असत् और इनकी उभयात्मकता आदि से भी परे बताते हैं–

'सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो' (विवेकचूड़ामणि 111)

क्या इसमें सृष्टि के मूल पर विचार करते हुये ऋषि हिरण्यगर्भ के 'नासदीय सूक्त' के इस कथन की सम्पूर्ण साम्यता नहीं देखी जा सकती है– **'नासदासीन्नो सदासीत् तादानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्' (ऋग्वेद 10/129/1)**

और क्या इसी सनातन परंपरा में ही तुलसी रामचरित मानस में सीता को 'उद्भवस्थितिसंहार कारिणीं' (रामचरित मानस, बालकांड श्लोक 5) नहीं कह रहे हैं ?

मैं यहाँ संक्षेपतः आदिशंकर की 'सौन्दर्यलहिरी' पर ही केन्द्रित रह अपने शीर्षक का आगे यत्किंचित विस्तार कर रहा हूँ।

सौन्दर्य लहरी का विषय तो भगवती का स्तवन ही है, परन्तु उसकी शैली ऐसी है कि स्तुति के बहाने पूर्वार्द्ध आनन्द लहरी के 41 श्लोकों में श्री विद्या के रहस्य, हादि कादि विद्या का उद्धरण, षट्चक्र वेध का प्रकरण, ग्रन्थित्रय का वर्णन इत्यादि साधनोपायों का दिग्दर्शन कराकर जीव– ब्रह्म की एकता पर साधक का लक्ष्य कराया गया है। इस अर्थ में इस ग्रन्थ में श्रौत, योग और तंत्र सिद्धान्त का अद्भुत समन्वय हुआ है। जिससे ब्रह्म एवं जीव का एकाकार प्राप्त हो वह श्रीविद्या प्रत्यक्ष राज राजेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी है। श्री शब्द का तंत्र शास्त्री एक अर्थ विष भी बताते हैं। उनके अनुसार इसे गले में धारण करने वाले भगवान शिव को इसीलिए श्रीकण्ठ कहा जाता है। इस विष को शिव ने श्रीयंत्रकार निवेश्य बना लिया। उनके चिरकाल तक इस आराधना में निरत रहने के पश्चात् ही उन्हें चन्द्रकला का अमृतस्वाद मिला। प्रथमार्ध आनन्द लहरी के 41 श्लोक भौतिक स्तर पर ब्रह्म की सत् शक्ति में प्रियता अर्थात् सौन्दर्य के भाव को जागृत करते है और चेतन स्तर पर आत्मानन्द को। आनन्द की लहरियों का अनुभव मानसिक एवं बौद्धिक तो है ही जड़–चेतन, नाम–रूपात्मक पदार्थों का सौन्दर्य भी लहरियों, स्पन्दनों की ही रचना है–

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं
तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः।
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया
हठात् त्रुट्यत्कांच्यो विगलितदुकूला युवतयः।।13।।

प्रश्न है कि साधना और सिद्धि क्या त्याग अथवा विकर्षण है ? वस्तुतः हम त्याग उसका करते हैं जो अप्रिय है, असुन्दर है। किन्तु यह अप्रियता और कुरूपता वस्तुतःकहां है, किसमें है ? यह कितनी वस्तुनिष्ठ कितनी व्यक्तिनिष्ठ है ? क्या प्रिय और सुन्दर के विषय में भी यही प्रश्न नहीं पूछा जा सकता ?

शंकर का यह सौन्दयोपक्रम एक महान तपस्वी का सृष्टि–कर्म है। इसमें जड़ चेतन, स्थूल सूक्ष्म और बाह्य–आन्तर समानान्तर चलते हुए लोक का अतिक्रमण कर देहातीत, भावातीत, गुणातीत और द्वन्द्वातीत हो जाते है –

मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन बिभृषे ।।35।।

योग और तन्त्र में कुडलिनी व्यष्टि में महाशक्ति का पर्याय है। वेद में जिसे उच्छिष्ट ब्रह्म कहा गया है, जिसे पुराणों में शेष कहा जाता

है, वही तंत्र में मूलाधार चक्र में स्थित तीन फेरे डाले कुंडलिनी शक्ति है जो सामान्यतया सुप्तावस्था में रहती है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा चक्रों का वेध कर यह शक्ति सहस्रार में शिव सायुज्य की चेष्टा में रहती है। यह अनुभव देह और देहातीत दोनों की परिधि है । इसका साधन और सिद्धि भी लौकिक और लोकातीत दोनों है । इसमें किसी नकार या स्वीकृति को स्थान नहीं है। साधन की इस परभावस्था में अमृत है, सर्व इच्छा संपूर्ति है, मंगल है और चिदानन्द का चैतन्य है –

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ।।8।।

आनन्द की इस तुरीयावस्था में परा का अनुगान वैखरी में होता है। ऋग्वेद के ज्ञान सूक्त के द्रष्टा ऋषि ब्रहस्पति ''सक्तुमिव तितउना'' के द्वारा मध्यमा स्तर से पश्यन्ती तक पहुंचते हुए कह उठते है –

देखकर भी देखता जिसको नहीं है एक
अथवा दूसरा सुनता नहीं जिसको स्वयं
सुनकर
प्रकट वह इस तरह होती कभी है अन्यको
सुवसना भार्या पति के लिए जैसे
वस्त्र का परित्याग कर देती ।

(ऋग्वेद मंडल 10/71)

परा के इस पश्यन्ती रूप के एक वर्तमान द्रष्टा ऋषि श्री औरोविन्दो को इस प्रसंग में याद करना मुझे बहुत आवश्यक लगता है। श्री ओरोविन्दो का सावित्री महाकाव्य भी सौन्दर्य लहरी के ही समान आख्यान और दर्शन की समानान्तर भूमिकाओं में संतरित होता है। सावित्री भाग तीन के दूसरे अध्याय में देवी के सौन्दर्य की संस्तुति कवि ने निम्न पंक्तियों में की है –

The Formless and the Formed were joined in Her
Immensity was exceeded by a look
A face revealed the crowded Infinite
Incarnating inexpressively in her limbs
The boundless joy the blind world- forces seek
Her body of beauty mooned the seas of bliss.

यह कहा जाना संभवत: आवश्यक है कि शंकर की यह परा कृति मात्र काव्यकृति नहीं है। शंकर के कवित्व का पैमाना ''कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भू:'' ही हो सकता है । इसका कवि शक्ति के सौन्दर्य का साक्षी और द्रष्टा है। वह भोक्ता कदापि नहीं है। इसमें एक तांत्रिक के भोक्ता–पद की प्रतीति भी नहीं है । एक योगी और तांत्रिक अपने पुरुषार्थ भाव से अधिकार संज्ञक हो जाता है। इस अवस्था में आकर वह अपनी देह और लोकावस्था को भी विस्मृत कर सकता है। किन्तु अद्वैत के इस परमाचार्य को इस साधन में भक्त का द्वैत, दैन्य और शिशुभाव का सहज स्वीकार है –

माता कह कब लाल महावर चरण तुम्हारे
प्रक्षालित जल विद्यार्थी बन पान करूंगा,
वाणी मुख ताम्बूल सिक्त जिस रसधारा से
जन्म जात गूंगे मे भी कविता उपजाती।

मानस की सीता के सौन्दर्य वर्णन में तुलसीदास जी ने समुद्र मंथन के एक सांग रूपक को विस्तार से उठाया है। उन्होंने इस सृष्टि में कल्पनातीत सुन्दरता के तत्व इकट्ठे करते हुए जिस लक्ष्मी को उत्पन्न कराया उसे सीता के समतुल्य बड़े संकोच में कहा। यह एक काव्य दृष्टि है। यह एक भक्त की भी दृष्टि है इसलिए सीता के नख–शिख वर्णन की सीढ़ियों पर वे नहीं चल सकते। किसी भी साहित्यिक काव्य कृति में नायिका रूप वर्णन चरित्र नायक की दृष्टि का सापेक्षिक होता है। इसके कवि को अपने चरित–नायक की पृष्ठभूमि, कथाक्रम और भावधारा के अनुरूप चलना आवश्यक है। इस सुन्दरता का साक्षात्कार इस अर्थ में एकांगी ही है। यह कवि तथा उस काव्यकृति के पाठकों के लिए तो कैसे भी उपभोग्य नहीं, चरित नायक के लिए भी सुन्दरता का अवशेष तभी तक शेष है जब तक वह उसे देख रहा है, उसे छू नहीं सका है।

शंकर की सौन्दर्य सृष्टि ऐसी बाधाओं से सर्वथा मुक्त है। महा त्रिपुर सुन्दरी शिव की पराशक्ति ही नहीं, आदि शंकर की आराध्या और उनके ब्रह्म साक्षात्कार की परमावस्था भी है। यह महादेवी पशुपति द्वारा सिद्धियों को प्रदान करने वाली चौसठ कलाओं के परे एक स्वतंत्र तंत्र की स्थापना करने में तो समर्थ है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उनके पलंग के चार पाए और शिव शंकर इसके धवल पट है । इस स्थिति में इस आद्याशक्ति का परिचय परब्रह्म महिषी के रूप में ही हो सकता है –

आगमविद् वाणी की देवी विधि पत्नी हैं
विष्णुप्रिया पद्मा, शिव भामिनि पार्वती है,
तू तुरीय दुष्प्राप अपरिमित महिमा वाली
ब्रह्म राज्ञि, जग भ्रमित महामाया से तेरी।

इस प्रकार तीन लोक, तीन काल और तीनों गुणों से समन्वित लोकातीत, कालातीत और त्रिगुणातीत सौन्दर्य मूर्ति के साक्षात्कार

की भूमिका में आदि शंकर निरे कवि न होकर कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू: है।

नख शिख रूप वर्णन की सामान्य और पारंपरिक परिपाटी नख, चरण से लेकर सिर की ओर जाने की रही है। कालिदास ने कुमार संभव में सर्ग एक के श्लोक 33 से 48 तक इसी का निर्वाह किया है। आदि शंकर ने इससे भिन्न आनन्दलहरी में 36 से लेकर 42वें श्लोक तक आज्ञा (मस्तक) से आरंभ कर तथा सौन्दर्य लहरी के 43 वें श्लोक से लेकर 96 तक मुकुट से नख तक का वर्णन विपरीत क्रम में किया है। इसका कारण स्पष्ट है। श्री शंकर जागृत चेतना के कवि हैं। उनका सौन्दर्य मूर्ति से साक्षात्कार प्रत्यक्ष है ।

आदि शंकर कौलमत के स्थान पर समयाचार साधना को ही लक्ष्यगत रखते हैं। इसके साधकों को ऊपर के चक्रों पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, नीचे के मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान पर नहीं क्योंकि इससे सांसारिकता में अध: पतित होने की प्रवल संभावना रहती है। यही कारण है कि शंकर ने सौन्दर्य लहरी में मुकुट से आरंभ कर चरण-नख का सौन्दर्य वर्णन क्रम रखा है। उसी प्रकार आनन्द लहरी में आज्ञा चक्र से आरंभ कर मूलाधार चक्र पर समापन किया है। स्पष्ट है कि आज्ञा चक्र का वेध हो जाने पर अन्य चक्रों का वेध स्वत: हो जाता है तथा साधक के अध:पतित होने की संभावना भी समाप्त हो जाती है।

उनका यह सामर्थ्य उनकी वह महान तंत्र दृष्टि है जो उन्हें भारत की वैदिक श्रौत परंपरा तथा अखंड ज्ञान-साधना से प्राप्त हुई थी। इसकी सर्वसिद्धि तदाकारता में ही हो सकती है –

वाग्जाल जप, सकल भंगिमायें मुद्रा हों
हो प्रदक्षिणा गति, भोजन तेरी आहुतियां
शयन समर्पण, अर्पण मां सारे सुख तुझको
पूजा पर्याय राग अनुराग हमारे।
(सौंदर्यलहरी 103 काव्यानुवाद)

संपर्क- 35 ईडन गार्डन, चूनाभट्टी,
कोलार रोड भोपाल 462016 (9425079072)

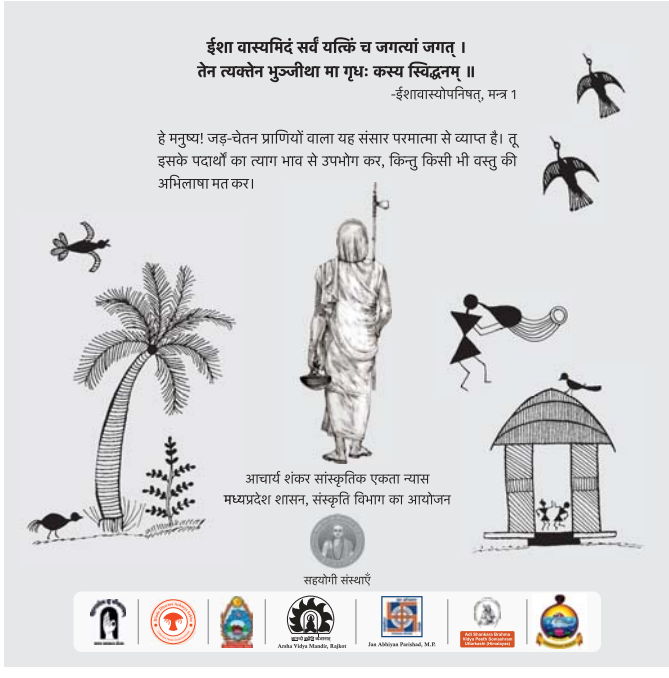

असली अर्थ में भगवान के मंदिर में वही पहुंचता है
जो धन्यवाद देने जाता हैं, मांगने नहीं।

आदि गुरु शंकराचार्य

भारत-भवन में आदिगुरु शंकराचार्य सांस्कृतिक एकता न्यास द्वारा आयोजित व्याख्यान माला के चतुर्थ पुष्पायोजन में मनोज श्रीवास्तव जी का उद्‌बोधन

आदिगुरु शंकराचार्य और विवेकानंद

मनोज श्रीवास्तव

हालांकि शंकराचार्य की जन्मतिथि को लेकर विवाद है और कई लोग उन्हें ईसापूर्व का भी मानते हैं, किस गर्द उन्हें आठवीं शती का भी मान लिया जाए, जो सबसे बाद का अनुमान है, तो भी मैं यह कह सकता हूँ वह शताब्दी कम वैश्विक संघर्षों की शताब्दी नहीं थी। तब यूरोप में शार्लेमेन का लगातार युद्धों वाला शासनकाल रहा था और यूरोप का पिता कहा जाने वाला यह शासक वाहन जैसे बड़े-बड़े नरसंहार कर रहा था। एद्‌विक क्लीन्सिंग का दौर था। कुछ इतिहासकार उसे प्राचीन पश्चिम का 'डार्केस्ट अवर' भी कहते हैं. इसी दौर में अरम आक्रमणकारियों तथा बायजेंटाइनों व बल्गेरियों के बीच युद्ध होना शुरू हो गए थे, सम्राट लियो तृतीय क्राइस्ट वर्जिन मेरी और ईसाई संतों आदि की मूर्तियों को तोड़ने का भयंकर अभियान चलाए हुए था, उमय्यद खलीफा की सेनाएं सिन्धु नदी के पूर्व के भारत को अपनी असफल कोशिशों का शिकार बनाने में सभी थी। ऐसे समय आदि गुरु शंकराचार्य की भारत में चल रही शंकर-दिग्विजय का वैचारिक अभियान जीवनादशी का एक अप्रतिम प्रतिमान रच रहा था। संघर्षों की उन द्वन्द्वात्मकताओं के बीच शंकराचार्य अद्वैत की देअर इज नो अंदर की बात कर रहे थे। जब भारत में बौद्धों को शंकराचार्य अपनी वैचारिक ऊर्जा से हरा रहे थे, तब चीन में बौद्धों पर अत्याचार और प्रतिबंध का दौर चल रहा था।

आज जब हम वैश्विक एकता की बात करते हैं तो हमें शंकर के उदय के इन वैश्विक संदर्भों को भी देखना चाहिए। हम सिर्फ तत्कालीन भारत में बहुत से मतों, पंथों, संप्रदायों के बीच शंकराचार्य द्वारा किए आध्यात्मिक पुनर्गठन को ही देखकर रह जाते हैं। उस कोल्ड कंफर्ट में तत्कालीन विश्व चेतना पर शंकराचार्य के विचार, दर्शन और धारणा के असर की पड़ताल से खुद को दूर रखते हैं और इससे भी कि वे अपने युग की आवश्यकता भी थे। हमें लगता है कि ग्लोबलाइज़ेशन या वैश्वीकरण आज ही हुआ है और उस शताब्दी में जिसमें कि आदिगुरु शंकर हुए विभिन्न राजाओं के पास वह अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य ही नहीं था जबकि इसी आठवीं शती में श्रीविजय साम्राज्य के राजा श्रीइंद्रबर्मन द्वारा खलीफा उमर बिन अब्दुल अजीज को दमस्कस में संदेश भेजा जाता है, इसी शताब्दी में बौद्धजातक कथाएँ सीरियाक और अरबी में अनूदित होती हैं. संत जॉन बुद्ध की जीवनी को ग्रीक में अनूदित करते हैं। पिलग्रिमेज टूरिज्म के जन्मदाता आदि शंकराचार्य अपनी यात्रा में तक्षशिला, गांधार तक भी पहुंचे उनके विचारों ने उन्हीं के समय विश्व-मानस को संस्पर्शित न किया हो, यह मानना मुझे कठिन पड़ता है। यह वही काल है जब बोरोबुदुर और अंगकोरवाट के मंदिर पूरे हुए। इसलिए मुझे लगता है कि शंकराचार्य पर एक अध्ययन ऐसा भी होना चाहिए कि वे अपने समय में विश्व मानस को कितना प्रभावित कर रहे थे। या कि उनका आविर्भाव सब होना क्यों जरूरी था।

तुलना करना उपयोगी होता है। मसलन आज कभी हम तत्वमसि That thou art को मार्लिन बूबर की & Thou के आमने सामने रखें। ऐसी ही एक कोशिश शंकराचार्य और विवेकानंद के बीच की जा सकती है। आठवी सदी में शंकराचार्य ने भारत का एक सांस्कृतिक रिजैसा वैसे ही संभव किया जैसे 1893 में स्वामी विवेकानंद की शिकागो वक्तृता ने किया था। बल्कि विवेकानंद के भीतर से बोल तो तब भी शंकर ही रहे थे। यह संयोग नहीं कि दोनों ही अल्पजीवी थे, दोनों ही अपनी मां से बहुत अटैच्ड थे। उस वक्त विवेकानंद की उपस्थिति में शंकर की आभा और शंकर की छाया दोनों ही थी। जो काम शंकराचार्य भारत में कर गए थे, विवेकानंद ने उसी को वैसे ही पश्चिमी दुनिया के नगरों में घूम-घूम के किया। जैसे गिरि तोटक हो गए, मंडन मिश्र सुरेश्वराचार्य बन गए, सनन्दन पद्मपाद बन गए, प्रभाकर पुत्र हस्तामलक वैसे ही मेरी लुई स्वामी अभयानंद बन गई, लियोन लैंड्सबर्ग स्वामी कृपानंद बन गए, मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल सिस्टर निवेदिता बन गई।

आज रिचर्ड किंग को लगता है कि वेदांत से जरूरत से ज्यादा भाव दे देने की गलती यूरोपीयों ने की जिसके कारण इस आधुनिक युग में नववेदांतियों ने विश्व को उपनिवेशीकृत कर लिया है। जैसे 19वी 20वीं शती में अंग्रेजों की सामाजिक अभियांत्रिकी के लक्ष्य वेदांत वेत्ताओं के रहते पूरे नहीं हो सके, वैसे ही मध्यकाल में शंकर के अद्वैत वेदांत ने हमें सस्पंद बनाए रखा। हम तीन शतियों तक अरब आक्रमणकारियों को हराते रहे। अद्वैत साहसिक दर्शन था।

औपनिवेशिक समय में ईसाई मिशनरियों ने जिस तरह की कल्चरल लीड हासिल करने की कोशिश की, अद्वैत ने उसी साहस से उसका हिसाब चुकता कर दिया था। लोगों को लगता है कि भारत वेदान्तियों के रूप में अपने मिशनरी पश्चिम भेजकर एक आध्यात्मिक रिकालोनाइजेशन कर रहा है। तब ऐसे भलेमानसों से यह कहना जरूरी हो जाता है कि अद्वैत का दर्शन otherization को निरस्त करता है जबकि कालोनाइजेशन बिना इस अन्यीकरण के बिना संभव ही नहीं था।

तो पता चलता है। शंकराचार्य की जन्मस्थली पर गया तो पता चला कि जन्म क्षेत्र के एक स्थान का नाम पिराठोम है जिसका अर्थ है जन्म स्थान तो स्वाभाविक है कि लगे यह आदि शंकराचार्य का स्थान है। लेकिन केरल में कुछ और चुपके-चुपके घट रहा है। विकीपीडिया में तो उसे कैथोलिक चर्च से जोड़ दिया गया है। देखिए

There is a claim that one of the three Biblical Magi(represent the three wise men(saint Balthasar, saint Caspar, saint Melchior) went from Piravom. The name Piravom in the local. Malayalam language translates to "birth". It is believed that the name originated from a reference to the Nativity of Jesus. There is a concentration of three churches named after the Biblical Magi in and around Piravom, as against only another three so named in the rest of India.

Saint Caspar(otherwise known as St. Casper, St. Gaspar, St. Kaspar, St. Jaspar and other variations) along with St. Melchior and St. Balthasar, represent the three wise men (Biblical Magi) mentioned in the Bible in the Gospel of Matthew, verses 2:1-9. Although the Bible does not specify who or what the Magi were, since the seventh century, the Magi have been identified in the Western Church as Caspar, Melchior and Balthasar. St. Caspar and the other two are considered Saints by the Catholic Church.

Some consider Caspar to be King Gondophares (AD 21-c.AD 47) mentioned in the Acts of Thomas. Others consider him to have come from the southern parts o where, according to tradition, Thomas the Apostle visited decades later.

इस प्रविष्टि की चतुराई देखिए। 'There is a claim से लगता है कि कुछ अन्य भी claims रहे होंगे लेकिन यह प्रविष्टि सिवाय इसके किसी अन्य claim का कोई उल्लेख नहीं करती। सिर्फ तीन मागी का ही उल्लेख किया है। लेकिन यह भी है कि जानते हैं कि बाइबल किसी का नामोल्लेख नहीं करती। फिर भी एक बार क्रिश्चियन सोर्स का जबरन जमा खर्च तो बता ही दिया गया और आदिगुरु को मेट तो दिया गया। तब तो यह तक नहीं है कि केस्पर संत था या राजा, लेकिन वह इतना तो है ही कि पिरावोम के संदर्भ में शंकराचार्य के नामोल्लेय तक को समाप्त कर सके।

और त्रासदी यह कि विकीपीडिया की इस पर सबसे पहले मुझ जैसे आउटसाइडर का ध्यान गया। स्थानीय लोग तो बेखबर ही थे। जिन्हें बताया वे शॉक में चले गये।

– लेखक अक्षरा पत्रिका के प्रधान संपादक है।

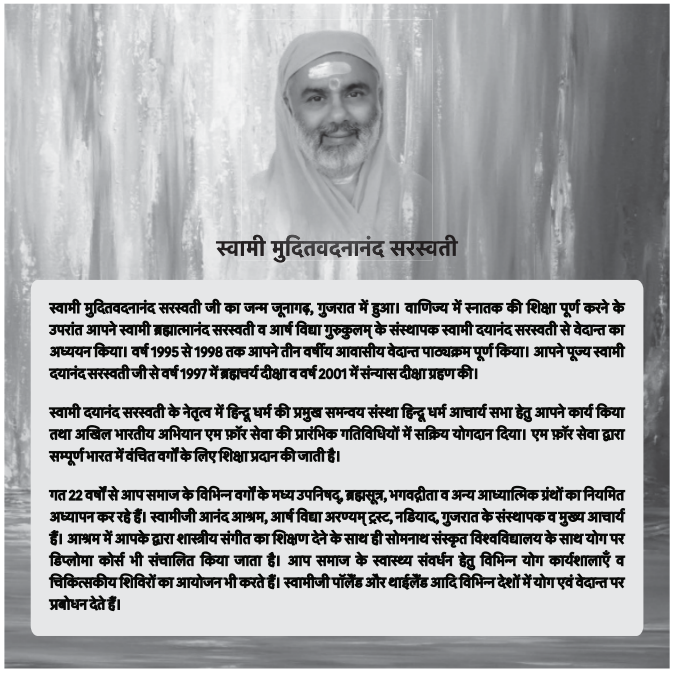

अमरूक शतक बुंदेली रूपांतरण

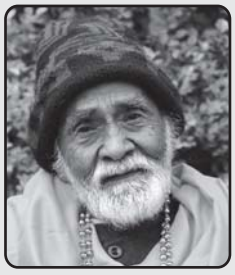

आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

मेरे सामने श्री पीयूष जी प्रभुदयाल श्रीवास्तव द्वारा लिखित और टंकित अमरुक शतक प्रस्तुत है, श्री पीयूष जी ने इसका मूल संस्कृत भाषा से बुंदेली भाषा में रूपांतरण प्रस्तुत किया है। रूपांतरण कैसा है यह रसिकों और काव्य शास्त्रियों के आकलन के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है। मेरी दृष्टि में यह प्रयत्न ही बुंदेली भाषा के इतिहास में अति महत्व का है अमरुक शतक पर संस्कृत साहित्य में भी जितनी चर्चा उचित थी, जितना कार्य होना चाहिए था, उसकी अपेक्षा काफी कम कार्य हुआ है।

अमरुक शतक संस्कृत साहित्य का उज्जवल मुक्तक काव्य है। यह काव्य, भंगिमा प्रधान काव्य है। अमरुक के मुक्तक रस और भाव से भरे हुए हैं। मुक्तक काव्य होते हुए भी इस काव्य की क्षमता प्रबंध काव्य से कम नहीं है। आनंदवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक में भूरि भूरि प्रशंसा की है। वे कहते हैं कि- ''यथा ह्यमरुकस्य कवेः मुक्तकः, श्रृंगार रसस्यन्दिनः प्रसिद्धा एव'' (ध्वन्यालोक 3/7 वृत्ति)

अमरुक के मुक्तकों से श्रृंगार रस टपकता है। वे प्रबंध काव्य का आनंद देते हैं और आगे बढ़ कर उनके टीका का रस संजीविनी में कहते हैं कि- ''यथा ह्यमरुकस्य कवेः मुक्तकः, श्रृंगार रसस्यन्दिनः प्रसिद्धा।'' (ध्वन्यालोक 3/7) अर्थात् अमरुक कवि का। एक श्लोक सौ काव्यों के सौंदर्य से सुरभित हैं। ऐसे रस सिद्ध अमरुक कवि के शतक का बुंदेली कविता में रूपांतरण साधारण कार्य नहीं हो सकता, पीयूष जी ने इस रस सिद्ध कवि की इस महान कृति का बुंदेली भाषा में जो यह रूपांतरण किया है, वह अत्यंत महनीय कार्य है, वे इसके लिए प्रशंसा के पात्र हैं।

अमरुक के विषय में निश्चित रूप से अनेक प्रकार की भ्रांतियां हैं। वे कब उत्पन्न हुए थे यह निश्चित नहीं है, उनका पारिवारिक जीवन क्या था, इसके विषय में भी कोई सुनिश्चित जानकारी नहीं है, अमरुक शतक के अलावा और कोई रचना काव्य अन्य है अथवा नहीं यह भी सुनिश्चित नहीं है, बस अनुमान है।

डॉ. कीथ आदि पाश्चात्य विद्वान अमरुक को कालिदास से परिवर्ती तथा इत्सिंग के द्वारा 651 ई. में दिवंगत रूप में वर्णित श्रृंगार शतक आदि के कर्ता भर्तृहरि कुछ परिवर्ती मानने के पक्ष में हैं।

प्रो. डे. अमरुक को छठीं शताब्दी के अंत में मानते हैं। 'आनंद वर्धन' ने ध्वन्यालोक में अमरुक शतक के तीन श्लोकों को उद्धृत किया है। इसके आधार पर यह स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि अमरुक आनंदवर्धन कवि से पहले हुए हैं। आनंदवर्धन का समय निश्चित है अतः यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि अमरुक आठवीं शताब्दी के पूर्व अवश्य मौजूद थे।

अमरुक कवि के संबंध में अनेक प्रकार की अनुश्रुतियां प्रचलित हैं, उसमें सबसे महत्वपूर्ण और विद्वानों में चर्चित अनुश्रति विद्यारण्य में स्वामी ने अपने शंकर दिग्विजय काव्य में प्रस्तुत की है।

कथा के अनुसार मंडन मिश्र को शास्त्र चर्चा में शंकराचार्य ने जब परास्त किया तब शास्त्रार्थ में मध्यस्थता करने वाली मंडन मिश्र की पत्नी सरस्वती जो वस्तुतः सरस्वती का ही अवतार थी उन्होंने अपने साथ शास्त्र चर्चा के लिए शंकर को बाध्य किया। शास्त्र चर्चा में सरस्वती शंकर को कहीं भी जब अपदस्थ नहीं कर पाई तो उन्होंने कामशास्त्र में प्रश्न किए। शंकराचार्य ने सरस्वती से कामशास्त्र चर्चा करने के लिए एक माह की अवधि मांगी और सरस्वती ने शंकराचार्य की अभ्यर्थना को मान लिया। बाद ने शंकराचार्य में अपने प्रधान शिष्य पद्मपाद से परामर्श करते हुए कहा-

सौन्दर्य सौभाग्यनिकेत सीमाः परः शता यस्थ सरोरुहास्यः ,
स एष राजाडमरूकाभिधानः शेते गतासुः श्रमतो धरण्याम्।
प्रविश्यकार्यं तमिमम्परासोर्नृपस्य राज्येऽस्य सुतं निवेश्य,
योगानुभावात पुनरूप्युपैतुमुत्काठते मानस मस्य दीयम्।।

इसके पश्चात पद्मपाद से विचार विमर्श कर शंकराचार्य अमरुक के मृत शरीर में प्रवेश किया। राज्योचित सुख भोग किए। इसी भोग क्रम में उन्होंने श्रृंगार रस गीति काव्य की रचना की, जैसा शंकर विजय में उल्लेख है-

पुरेव भोगान ब्रुभुजे महीभृत, स भोगिनीभिः सहितोऽप्यरस्तः,

कन्दर्प शास्त्रानुगतः प्रवीणः वात्स्यायने तच्च निरैक्षताद्धा।
वात्स्यायन प्रोदित सूत्र जातं, तदीय भास्य च निरस्य सम्यक्,
स्वयम्व्यधत्ताभिनवार्थगर्व, निबन्धमेकं नृप वेश धारी॥

उपाख्यान से स्पष्ट होता है कि अमरुक शतक की रचना, वस्तुतः शंकराचार्य ने अमरुक के शरीर में रहकर की थी।

अमरुक शतक की अनेक टीकाएं हुई हैं के. एल. राजकृत श्रृंगार दीपिका, रविचंद्र कामदा टीका, सूर्य दास कृत श्रृंगार तरंगिणी, शेष रामकृष्ण कृत रसिक संजीवनी, अमरुक दर्पण, नंदलाल कृत टीका ज्ञानानंद कलाधर सेन कृत टीका आदि और भी टीकाएँ हैं, पर इन सब में सर्वश्रेष्ठ टीका अर्जुन वर्मा की रसिक संजीवनी नाम की टीका है यह तेरहवीं सदी में लिखी गई है।

अमरुक शतक के अनेक अनुवाद हुए हैं। फैड्रिक स्कर्ट, लिण्डाटन के अनुवाद। अमरुक की वर्तमान समय में एक श्रेष्ठ टीका डॉ. विद्याधर निवास मिश्र की है। अभी तक बुंदेली भाषा में या किसी और आंचलिक भाषा में अमरुक शतक अनुवाद भाषा कारण या रूपांतरण काव्य में नहीं हुआ है यह पहला अवसर है कि श्री पीयूष जी ने इस श्रेष्ठतम गीतिकाव्य पर कलम उठाई है इसलिए भी इसका विशेष महत्व है।

प्रस्तुत अनुवाद में पीयूष जी ने प्रत्येक श्लोक का रूपांतरण बुंदेली भाषा में किया है अन्य प्रांत के रसिकों की जानकारी के लिए रूपांतरित श्लोक का भावार्थ दिया है। साथ ही नायिका भेद से संबंधित जहां ठीक समझा वहां रीतिकालीन कवियों द्वारा स्वीकृत लक्षण का विधान भी किया है ,यदि इस अनुवाद में प्रत्येक श्लोक से संबंधित चित्र दे दिए जाते तो काव्य रसिको की तृप्ति में स्वर्ण सुगंधी का कार्य होता। संतोष है कि प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की उदारता से लेखक को चार चित्र मिल गए हैं जो उन्होंने बुंदेली कलम से प्रभावित चित्र माने हैं। रूपांतरण कर्ता को उपाध्याय जी के प्रति इस अहेतुकी कृपा ने कृतज्ञता से भर दिया है।

अनुवाद में से सहृदयों के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं ध्वन्यालोक के व्याख्याकार महान आचार्य अभिनव गुप्त जो काव्य और नाट्यशास्त्र के महान मर्मज्ञ थे उन्होंने अनेक स्थानों पर अमरुक के मुक्तकों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए उनकी सूक्ष्म समीक्षा की है जो परिवर्ती साहित्यकारों के लिए आदर्श समीक्षा का प्रतिमान बन गई है। यथा–

1. भाव शांति ध्वनि का विवेचन में श्लोक (75)
2. संभोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार के विविधीकरण का निरीक्षण में श्लोक (23) और
3. निषेध लक्षणा को मीमांसा में आ. द्वारा प्रशंसा की गई–

चित्तवृत्ति प्रति शब्दानां बहिरंगत्वं (अभिनव भारती 7वीं श्लोक 23) के संदर्भ में कहा है यह उदाहरण है जो व्यक्ति स्पष्ट करता है कि यहां मानसिक स्थिति और उसको व्यक्त करने के लिए चुने हुए शब्दों का इस प्रकार का अन्तः संबंध स्थित है कि सहृदय रसिक काव्य मर्मज्ञ के हृदय में उत्पन्न रसोद्रेक के प्रवाह के सामने कोई विपरीत विचार भाव ठहर ही नहीं सकता।

यहाँ श्लोक 23 प्रस्तुत है, इसमें संभोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार के विभेदीकरण का निरसन दृष्टव्य है:–

एकस्मिशयने पराड़मुखतया वीतोत्तरे ताम्यतो
रन्योन्यं हृदयस्थितेऽप्यनुनये संरक्षतौगौरिवम्
दंपत्योंः शनकैरपाड़ग्वलनान्सि श्री भव चक्षुषोः
भग्नो मानकलिः सहासरभसं व्यावृत्त कण्ठगृहः।।

श्लोक क्र. (23)

श्री पीयूष बुंदेली में इसका रूपांतरण इस प्रकार करते हैं।

दोऊ मान करें है भारी, कोऊ न मानत हारी।
पींठ दएं चुपचाप पलंग पै पोढ़े प्रीतम प्यारी।
लखत कनखियन अखियां मिलगई, छटी बदरिया कारी।
बड़े बेग बे मिल मुस्काने, उर गल बहियां डारी।

यहां पति पत्नी दोनों मान पर ऐठें हैं, एक दूसरे को देख नहीं रहे हैं ,एक दूसरे की ओर पीठ किए हैं। प्रश्न उत्तर नहीं चल रहा है ,सब अपने मान से भरे हैं पर कनखियों से देखते ''देख कनखियन अखियां मिल गई,'' फिर मुस्कान फूट पड़ी ''उर गल बहिया डारी'' दोनों गले मिल गए संभोग श्रृंगार और विपृलंम्भ श्रृंगार का निरसन हो गया। अमरूक की संयोग और वियोग स्थितियों की टकराहट के अंतरिक सौंदर्य को प्रेषित करने की अद्भुत शक्ति मुखरित है। इसी प्रकार दसवें मुक्तक में प्रियतम विदेश जा रहा है अमरूक कहते हैं:–

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि! पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते
नो कार्या नितरां कृशासि, कथयत्वेवं सवास्ये मयि।
लज्जा कमन्धर तारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा
दृष्ट्वा मां हसितेन भाविसरणोत्साहस्तया सूचितः॥

(श्लोक 'क्र.'10)

करलइ ती पूरी तैयारी, पै अब बात बिसारी।
भरे गरे सें जब कई उनसें, हमें जान दो प्यारी।
परदेसी का ?मिलन ना आकें, छोड़ो फिकर हमारी।
फीकी हॅस हेरन तिय हिय की, विथा बतारइ सारी।।

रूपांतरण में पीयूष जी ने कहा है कि– 'फीकी हॅस हेरन तिय

हिय की, विथा बतारइ सारी।।' यह 'भविष्यत प्रवासात्मक' विप्रलंभ श्रृंगार की प्रतीति को भलीभांति संकेतित कर रहा है, शायद इसी भाव पर रीझकर चितेरे ने यह चित्र अपनी तूलिका से खींचा है, जो रंगों और रेखाओं के माध्यम से इसी भाव को अभिव्यंजित कर रहा है।

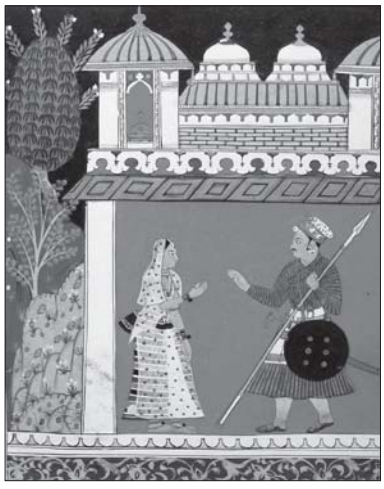

अमरुक ने उज्ज्वल श्रृंगार को ही अपने काव्य का आधार बनाया है। परकीया के प्रेम को उन्होंने प्रतिपाद्य नहीं माना है। एक उदाहरण है सखि या नायिका की क्रीडा संचारी भाव से युक्त संयोग श्रृंगार का जो व्यंजनात्मक शैली में पुष्ट संयोग श्रृंगार को संकेतित कर रहा है।

दंपत्योर्निशिजल्पतो गृहशुकेनाकर्णितं यद्यस्तत्प्रातर्गुरु
संनिधौ निगदतः श्रुत्वैव तारं वधूः।
कर्णालिम्बित पद्मराग शकलं विसस्य चञ्वा पुरा,
क्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफल व्याजेन वाग्बन्धनम्।।
(श्लोक क्र.16)

रूपांतरण–

इक दिन जब सब बाहर गए ते, नवल जुगल घर रय ते।
खुल के करन लगी रस बतियां, शबद सुआ सुन लए ते।
बेइ वचन जब सबइ सामने, सुअना ने फिर कए ते।
तिय कनफूल के नग अनार से- चौचइ में धर दए ते।

अमरुक के इस मुक्तक को आनंदवर्धनाचार्य ने मर्म छिपाने के उपाय के कारण इसमें युक्ति अलंकार माना है। जबकि सामान्य समीक्षक यहां भ्रांति होने से भ्रांतिमान अलंकार मानते हैं। सुंदरता मर्म छुपाने में भ्रांति उतनी नहीं। पीयूष ने अपने भावांतरण में मर्म छिपाने की बात को ही बुंदेली में व्यक्त करते हुए कहा है–

'बेइ वचन जब सबइ सामने, सुअना ने फिर कए ते।'

के द्वारा क्रीडा की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मानते हुए लिखा है कि–

'तिय कनफूल के नग अनार से- चोंचइ में धर दए ते।'

इस प्रकार युक्ति अलंकार ही मुखरित होता है जो अनुवादक की मर्म दृष्टि (सूक्ष्म दृष्टि) का द्योतक है'

मुक्तक 76 में प्रेषित पति का नायिका और अनुकूल नायक के मध्य प्रवास विप्रलंभ का दर्शनीय चित्र अमरुक ने प्रस्तुत किया है–

आदृष्टि प्रसरात्प्रियस्यपदवी मुद्वीक्ष्य निर्विण्णया,
विच्छिन्नेषु पथिस्वहः परिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति ।
दत्वैक ससुचा गृहं प्रति पदं पस्थस्त्रियास्मिक्षणे
मा भूदगत इत्यमन्दवलितग्रीषंपुनर्वीक्षितम्॥

रूपांतरण–

प्रिय पथ देखत बिरहन प्यारी, उठ उठ निगा पसारी।
बड़े भोर सें दिन लौटे अब, घिरन लगी अंदयारी।
गैल बंद भइ मन मारें घर, लौटन लगी विचारी।
एकइ डग धर देखत मुड़कें, लौटे स्यात बिहारी।
यहाँ 'एकइ डग धर देखत मुड़कें, लौटे स्यात बिहारी।'

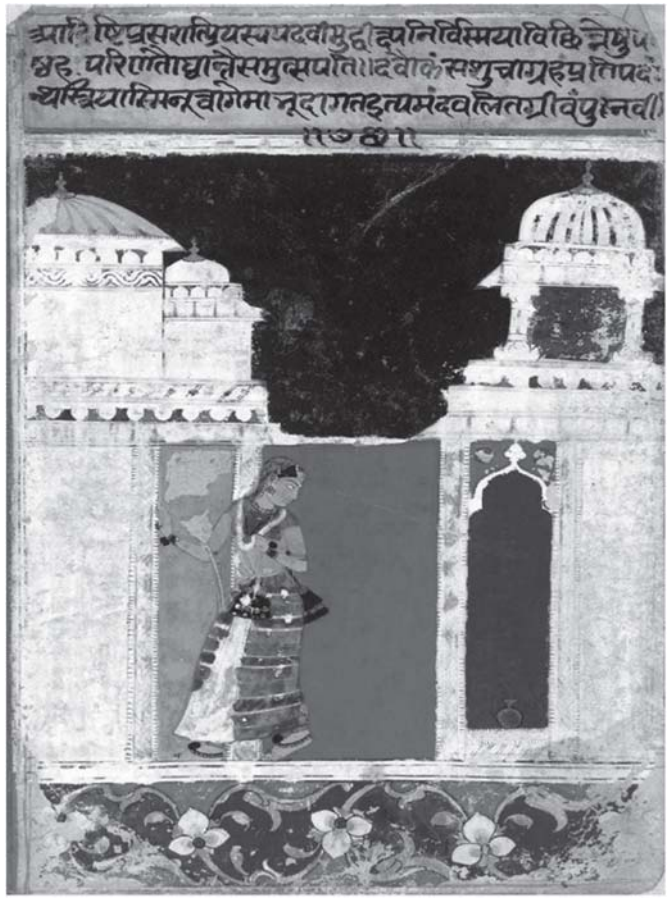

यह बुंदेली रूप प्रेषित पति का नायिका की अंतर्दशा का संकेत है। चित्रकार ने अपनी तूलिका से इसी भाव को चित्र में व्यंजित किया है, जो बुंदेली कलाकार का कमाल है।

अब आगे देखिए वही नायिका जब संगमोत्कंठिता स्थिति पर पहुँचती है, विरह से प्रेरित हो, रति से व्याकुल हो किस प्रकार का अकल्पित व्यवहार करती है। यह दृष्टव्य है। वैदग्ध्य का संकेत है। अमरुक लिखते हैं और कवि पीयूष बुंदेली शब्दों में इस भाव को इन शब्दों में भावान्तरित करता है।

आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीत्वा कथंचिद्दिनं
वैदग्ध्यापगमाज्जडे परिजने दीर्घा कथां कुर्वति।
दष्टास्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं
तन्वङ्ग्या रतिकातरेण मनसा नीतः प्रदीपः शमम्॥
विरहिन पिय बहुरत हरसारइ, फूली नईं समारइ।
मिलन आस में दिन बीतो सब, संजा सुखद सुहारइ।
द्रोपदी चीर सरिस सखियन की, बातें बड़ा न पारइ।
'काट खाव' चरा झटकत तिय, दौरत दिया बुझारइ।
'काट खाव चरा झलकत..... दिया सुधारइ'

पिय के विदेश से लौटकर आने पर उस बिचारी ने दिन तो जैसे तैसे मिलन विषयक अभिलाषाओं में काट लिया पर सहृदयता शून्य सखियों ने लंबी बातें शुरू की जो विराम का नाम ही नहीं ले रही थी, सत्य सात घड़ी का होता है। विरह से व्यथित उस बेचारी ने डँस लिया डँस लिया 'काट खाव चरा झटकत तिय.....दिया बुझारइ।' झीनांशुक से दीपक बुझा देती है ताकि बातों का सिलसिला टूट जाए। यह कोमल भाव चित्रकार ने चित्र में अत्यंत कुशलता से व्यक्त किया है। इन थोड़े से उदाहरणों में पाठक देखेंगे कि किस प्रकार बुंदेली कवि संस्कृत साहित्य के उत्कृष्टतम गीति काव्य का किस प्रकार रस, भाव और भंगिमाओं को संजोते हुए रूपांतरण में प्रस्तुत करता है।

भाषा में प्रस्तुतीकरण, शब्द- विन्यास, अर्थ प्रधान हैं। एक भी शब्द व्यर्थ नहीं है। विशेषण कहीं अनावश्यक नहीं है। भाषा तरल और भावपूर्ण है। अमरुक के काव्य की विशेषता उसकी सहजता है। उस समय की समृद्ध और संपन्न समाज के चित्र अमरुक शतक में हैं, जो कहीं से कहीं तक अश्लील नहीं हैं। भावों की पुनरावृत्ति नहीं है व्यंग भी सहज रूप से दिखाई देता है। लय छंद और अर्थ का संयोग और शब्द संगीत का प्रयोग बहुत सुंदर ढंग से हुआ है। यह सब है पर यह रूपांतरण बुंदेली भाषा में है जो संस्कृत की तुलना में कितना अपना गौरव व्यक्त कर सकी, इसे सहृदय पाठक देखें। अनुवादक

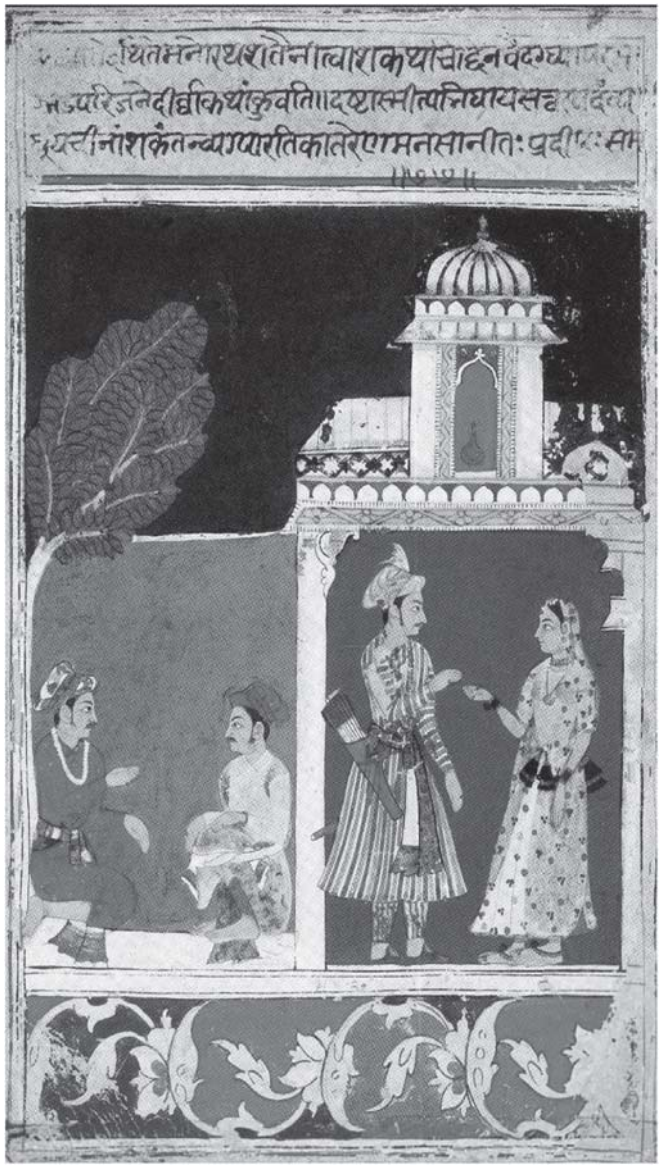

का काम मूल लेखक से कम कठिन नहीं है, फिर अमरुक तो ऐसे रससिद्ध कवि हैं, उनका भावानुवाद एक बुंदेली युवक आज के इस युग में जैसा कुछ कर सकता है इस दृष्टि से रचना पर यह विचार करते हैं तो मन में कहीं भी असंतोष नहीं होता यह अतिश्रेष्ठ रचना का श्रेष्ठ अनुवाद बुंदेली में एक मील का पत्थर है। अंत में मैं यही कहूंगा कि मेरी मरुत् गणों से ऋषि अगस्त्य के शब्दों में यही विनय है कि ''विद्यामेषं वृजनं जीर दानुम्।''

श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी के प्रति लेखक अत्यंत कृतज्ञता पूर्वक उनके चित्रों संबंधी अवदान के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता है।

संपर्क: नूतन विहार (कालोनी), टीकमगढ़ (म. प्र.)
मो. 7909930700

■

आलेख

रास

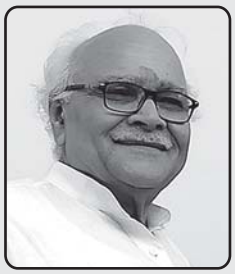

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

रास शब्द रस शब्द से व्युत्पन्न है, दार्शनिकों का रसो वै स:,काव्यशस्त्रियों के लिए काव्य की आत्मा, चित्त की द्रवीभूत-अवस्था, अहंकार की विस्मृति, चित्त की मुक्तावस्था! जीवन का आनंद-तत्व। रास की अवधारणा एक युग की रचना नहीं है। रास की अवधारणा भारत के लोकमन में समायी हुई है, वहीं रास की अवधारणा में भारत का लोक- मन व्याप्त है। दोनों में व्याप्य-व्यापक संबंध है। रस - उपासना की भूमि रास है। भारत की समस्त ललित कलाओं ने रास का साक्षात् करके अपनी धन्यता मानी है। भारत के मूर्तिकारों ने, चित्रकारों ने नाट्यकारों ने, संगीतज्ञों ने, नर्तकों ने, गीतकारों ने कवियों ने रास को लेकर जिस विराट कला वैभव का सृजन किया है, उसका आकलन आज तक भी हो सका है, यह कहना कठिन है। रास उत्सव है, केलिक्रीडा है, नृत्य है। रास उपासना और अनुष्ठान है, रास लीला है। रास मंच है तथा रास एक दर्शन है। रास को लेकर सहस्त्रवधि-ग्रन्थ लिखे गए हैं, फिर भी रास एक प्रश्न है जटिल प्रश्न है।

आचार्यों ने उसको लेकर कितने भाष्य किये हैं ,उसे देखने, पढने और समझने की बात तो कैसे करूं,बहुत सीमित अध्ययन है, उसका आकलन या बिब्लियोग्रैफी भी अभी नहीं बनी! रास पंचाध्यायी को लेकर आचायों और मनीषियों ने शत-शत व्याख्याएं की हैं ! किसी ने उसे श्रीयन्त्र का रूप माना और किसी ने उसे परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड-मण्डल की गति माना। किसी ने रास में वेदार्थ का निरूपण किया तो किसी ने ब्रह्मविद्या का निरूपण किया। किसी ने योगपरक व्याख्या की और श्रीराधा को कुण्डलिनी-रूपा बतलाया। किसी ने योग-विद्या के अन्तर्गत प्रेम-योग और राज-योग के सिद्धान्तों के साथ रासलीला को देखा तो किसी ने श्रीकृष्ण को सूर्य और राधा, अनुराधा, विशाखा की नक्षत्र मानकर आकाशीय गति अथवा नृत्य के रूप में रास की व्याख्या की। किसी के लिए रासलीला प्रकृति पुरुष-रूपा है। महर्षि शांडिल्य ने राससूत्र लिखे- **अथातो रसो ब्रह्म, सैवानन्द-स्वरूपो श्रीकृष्ण: तेषामन्योन्याश्रयत्वम् तस्मात् रासोत्पद्यते, ललिता देव्यो पोषणीयत्वेन लभ्यते** ''29 सितम्बर 1970 को एक जिज्ञासु ने ओशो रजनीश से प्रश्न पूछा, तो रजनीश बोले-इतना काफी नहीं है कि हम कृष्ण को गोपियों के साथ नाचते हुए देखें यह हमारी बहुत स्थूल आँखें जो देख सकती हैं, उतना ही दिखाई पड़ रहा है। कृष्ण का गोपियों के साथ नाचना, उस विराट् रास का छोटा-सा प्रतीक है, उस विराट् का एक आणविक प्रतिविम्ब है। वह जो समस्त में चल रहा है, नृत्य उसकी एक बहुत छोटी-सी झलक है। उसका कोई कामुक अर्थ नहीं है, यद्यपि कामुक-अर्थ के लिए कोई निषेध नहीं है। लेकिन बहुत पीछे छूट गई वह बात।

कृष्ण यहाँ पुरुष की तरह नाचते हैं। गोपिकाएं स्त्रियों की तरह नहीं, गहरे में वे प्रकृति ही हो जाती हैं। प्रकृति और पुरुष का नृत्य है वह । मनुष्य की पहली भाषा नृत्य है , तितलियाँ भाषा नहीं जानती लेकिन नृत्य जानती हैं। पक्षी भाषा नहीं जानते लेकिन नृत्य जानते हैं। जहाँ व्याकरण नहीं पहुँचता वहाँ घुँघरू की आवाज पँहुच जाती है। दुनियाँ के किसी कोने में नर्तक चला जाए, समझा जा सकेगा। स्त्री और पुरुष के बीच जो आकर्षण है, यह आकर्षण एक दूसरे की निकटता में उनके भीतर छिपी हुई शक्तियों का बह जाना है! अपनी-अपनी समझ, अपने-अपने स्वभाव अपने-अपने परिवेश अपने-अपने ज्ञान के आधार पर रास की व्याख्याएं चलती रही हैं और चलती रहेंगी, परन्तु इतना निश्चित है कि लीला इतिहास नहीं है और लीला को इतिहास समझ लेना मानव-बुद्धि का पराभव है। लीला को लीला की दृष्टि से ही देखना आवश्यक है और वैष्णव आचार्य रास के मर्म बिन्दु तक पहुँच सके थे। 15 वीं शताब्दी में असम के शंकरदेव ने ब्रजबुलि में केलिगोपाल नामक अंकिया नाट की रचना की थी- **शरत शशी निशि धवल अधिक, लहु लहु मलय पवन तहि थिक। बिरिन्दाविपिन कुसुम परकास, पेखि करल रास केलिविलास!**

केलिगीतों की वही प्राचीन- परंपरा भागवतकार के मन में

गूँज रही थी, जिसका स्वर वेणुगीत, युगलगीत, गोपीगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत का राग बन गया है! वह लोकमन ही था, जो भागवतकार के मन में संक्रान्त हुआ, ठीक वैसे ही जैसे भागवतकार का मन जयदेव, विद्यापति, महाप्रभु चैतन्य और आचार्य वल्लभ के मन में संक्रान्त हुआ तथा आचार्यमानस, कविमानस और भक्तमानस से वह पुन: लोकमानस में संक्रान्त हुआ! लोकमन से प्रेरणा पा कर भारत के चित्रकारों ने रस और रास के चित्र बनाये तथा संगीतकारों ने रास के संगीत और नृत्य का विकास किया! यह लोकमानस और

शास्त्रमानस की निरन्तर-प्रक्रिया है! भागवत-कार ने रास-प्रसंग में केलिगीतों का उल्लेख किया है- **निशम्य गीतं तदनंग वर्द्धनम्!** केलिगीतों की परंपरा उससे भी प्राचीन रही होगी! गाहासतसई में राधा का उल्लेख है! तमिलसाहित्य के अध्येताओं ने मुल्लइ वन-प्रान्तर में गाय चराने वाले ऐयर जन में प्रचलित लोकगीतों की बात कही है! ब्रजसाहित्य के समीक्षकों ने गोप-आभीर-गुर्जर के लोकगीतों का संदर्भ दिया है! कोई गीत-परंपरा गीतगोविन्द के पीछे है और कोई गीत-परंपरा विद्यापति के गीतों से जुड़ी हुई अवश्य है! विद्यापति के जमाने में राधाकृष्ण के प्रेमगीत भी लोकप्रचलित थे और हरगौरी के गीत भी लोकजीवन में गाये जाते थे! विद्यापति ने राधाकृष्ण के प्रेमगीत भी लिखे और हरगौरी के गीत भी लिखे विद्यापति के गीत, महेशवानी, सोहर, बटगमनी, तिरहुत, समदाउन, नचारी आदि पुन: लोकमानस में रच बस गये! उनके गीत मन्दिरों में कीर्तन के रूप में भी गाये जाने लगे! सूरदास के पदों के संबंध में यही बात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कही है! ऐसे अनेक लोकगीत आज भी ब्रज में प्रचलित हैं, जिनमें सूर के पद तथा लोकगीत का भेद कहीं खो गया है!

सूरदास का काव्य भी किसी परम्परा से जुड़ा हुआ है। लोक-जीवन में केलि-गीतों का प्रवाह अविच्छिन्न है, भिन्न-भिन्न प्रदेशों, जनपदों, आदिवासी-अंचलों और वनभूमि में निरन्तर गूँजने वाले केलि-गीतों का अछोर विस्तार है। मन में तामस और राजस अवस्था होती है, किन्तु किन्हीं सात्विक क्षणों में सुनें तो वे केलि गीत, जो लता मंगेशकर ने गाए हैं, वे भी मनुष्य की ही राग चेतना है। वे केलि गीत, जो भागवत में वेणु गीत, गोपी-गीत, युगल गीत, भ्रमर गीत और महिषी गीत बने थे वे ही क्या रास-उपासना का स्रोत नहीं हैं? वह लीलाविग्रह, वह भावशरीर, जिसे धारण करके अद्वैतवादियों का निर्गुण ब्रह्म रसिक-उपासकों का रस बना है, रास इन्हीं केलिगीतों का परिपाक है । भागवतकार के पीछे केलि गीतों की कोई परम्परा अवश्य थी, वह आयरों की हो, गोपों-आभीरों-गुर्जरों की हो अथवा अन्य जनपदों और जनसमूहों की हो। वह लोकमन भागवतकार के मन में सक्रान्त हुआ था, उसी प्रकार से जैसे कि भागवतकार का मन जयदेव, विद्यापति, महाप्रभु चैतन्य, वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास, हरिवंश आदि के मन में संक्रान्त हुआ तथा आचार्य मानस, कवि-मानस और भक्त मानस से वह पुन: लोक- मन में संक्रान्त हुआ !

अवश्य ही रास-उपासना आनन्द-भाव की उपासना है, रस की उपासना है, किन्तु यह रस ऐन्द्रिक नहीं है। ''रासपचाध्यायी'' में नन्ददास कहते हैं कि नेत्रहीन लोगों के लिए भगवान् की रासलीला प्राकृतरतिक्रीड़ा मात्र है, किन्तु प्रज्ञावान लोगों के लिए यह अप्राकृत है, दिव्य है। वह जो स्वयं सच्चिदानन्द है, भला वह इन्द्रियगामी कैसे हो सकता है? नन्ददास के शब्द हैं कि मुरली नाद की जननी है और आगम-निगम का उद्भव उस नाद से ही होता है। नादब्रह्म की जननि मोहनी सब सुख सागर। जाकी सुनते गमनिगम प्रगटे बहु नागर ।

यह रास विश्व सौन्दर्य-माधुर्य का स्रोत है, अवश्य ही

कामचेतना के साथ इसका अन्तरंग सूक्ष्म सम्बन्ध है, किन्तु यह काम-भाव चिन्मय है, सूक्ष्म है, स्थूल नहीं है। समस्त विश्व रास के संगीत से ही मुखरित है, रास-नृत्य में ही स्पन्दित है। रास के आनन्द से ही जीवन में प्रयोजन है, आनन्द न हो तो लोग क्यों जीवित रहें? रास के मूल में रस है। रस स्वयं ही आस्वाद है और स्वयं ही आस्वादक है। रस ही लीला, धाम, विभिन्न आलम्बन तथा उद्दीपन के रूप में क्रीडा-परायण है।

हंस-विलासतन्त्र ''का वाक्य है- **रसमयः कश्चित् चमत्कारविशेषो रासः स च सर्वत्र व्याप्तः सामरस्यात्'' रसो वैसः, रस सच्चिदानन्दलक्षणं शक्तिशिवैक्यरूपं तस्य विलासो रासः अनिर्वचनीयलीला चमत्कृतिः।** रास चमत्कार-विशेष है और वह सर्वत्र व्याप्त है। वह शिव-शक्ति का ऐक्य-रूप है, वह सामरस्य है। वह सचिदानन्द का विलास है और शब्दों के द्वारा ग्राह्य नहीं है. अनिर्वचनीय है। हादिनी शक्ति अनादि अनन्त-काल से विचित्र रसों की सृष्टि करके, विचित्र भावों में अपने को अभिव्यक्त करके, विचित्र सौन्दर्यमाधुर्यमण्डित रूपरूपान्तर परिगृहीत करके, अपने नित्य आश्रय ब्रह्म की आराधना करती है, आत्मसम्भोग करती है। ब्रह्म नित्य अपनी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति का आलिंगन करके उसके विचित्र रसविलास का आस्वादन करता है एवं उसी के भीतर आप ही अपने स्वरूप की नित्यनवायित भाव में उपलब्धि और संभोग करता है। ब्रह्म की स्वरूप भूता इस ह्लादिनी के विचित्र विलास का ही नाम रास है! शैव और शाक्त-साधकगण इस रसतत्व का हो - गौरी के नित्य मिलन एवं महामाया की नित्य निरन्तर शिवाराधना के रूप में ध्यान और आस्वादन करते हैं। इस सच्चिदानन्दमयी आत्मस्वरूपा महाशक्ति या परमाप्रकृति को नित्य आलिंगनबद्ध करके ही महायोगीश्वर शिव अर्द्धनारीश्वर रूप में साधकों के सम्मुख अपने को प्रकट करते हैं।''

रास नृत्य है और इसकी पहचान आभीर -नृत्य ''हल्लीसक'' के रूप में की गई है।''अहीर गूजर''''सूरसागर मे अनेक स्थलों पर विद्यमान हैं। और यह एक सामाजिक-सांस्कृतिक सूत्र है। प्रत्येक जाति की अपनी यौन-मर्यादाएं, पाप-पुण्य की अवधारणाएं और परम्पराएं होती हैं। डॉ. हरद्वारी लाल शर्मा के शब्द हैं- ब्रज में गोधन से सम्पन्न आर्य-अनार्य जातियाँ आमोद-प्रमोद के साथ पूरा जीवन जीती थीं और काम का सौन्दर्य एवं माधुर्य इसी भरपूर जीवन का अंग है। ''आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य'' नामक ग्रन्थ में भक्ति के विकास में तमिल योगदान का विवेचन करते हुए तमिल समाज की प्रथाओं का उल्लेख किया गया है। डॉ. बनिकांत काकती ने अपने ग्रन्थ ''विष्णुआइट मिथ्स एण्ड लेजण्ड्स'' (पृ. 41 से 65) में रास लीला की उत्पत्ति के विषय में कहा है कि अनेक स्थानीय प्रथाओं का मिलित रूप ही रास लीला में मिलता है। रास लीला की उत्पत्ति के लिए सहायक जिन प्रथाओं का डॉ. काकती ने अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है, सभी प्रथाएँ प्राचीन तमिल समाज में प्रचलित थीं। अतः प्राचीन तमिल साहित्य में कान्नन तथा ग्वालिनों के नृत्य इत्यादि का जो विवरण मिलता है, उनका रासलीला से सम्बन्ध सिद्ध होता है।

भागवत में स्वयं परीक्षित ने ही प्रश्न उठा दिया **''प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम्''** धर्म को मर्यादा बनाने वाले ने ही धर्म के विपरीत परस्त्री-स्पर्श किया? **कृष्णं विदुः परं कांतं न तु ब्रह्मतया मुने। गुणप्रवाहो परमस्तासां गुणधियां कथम्।** (10.29.12) गोपियों का कृष्ण के प्रति ब्रह्म-भाव नहीं, जार-भाव था **तमेव परमात्मानं जार-बुद्ध्यापि संगताः** (10.21.11) एक और रास के अनंगवर्द्धन गीतों को भागवतकार ने ''लीला'' के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु दूसरी ओर वह आर्य मर्यादा को भूला नहीं है। **''जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः।** (10.29.18 26) जार-पुरुष के पास जाना निन्दनीय है, मर्यादा के विरुद्ध है, नरक का हेतु है।'' गोपियों, रात के समय घोर-जंगल में स्त्रियों को नहीं रुकना चाहिए, तुम लोग अपने-अपने घर लौट जाओ। पतियों और सतियों की सश्रूषा करो।'' भागवतकार कहता है कि वंशी की टेर सुनकर जब गोपियाँ धैर्य खोकर चलने लगीं, तब पिता और पतियों, भाई और जाति-बन्धुओं ने उन्हें रोका'' **ता वार्यमाणाः पतृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।** ''(10.29.08)रास रति-क्रीड़ा है, स्वयं भागवत का वाक्य है-

बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीराणामुत्तंभयन् रतिपतिं रमयांचकार।

(10.29.46)रास शब्द अध्यात्म की कितनी उदात्त अवधारणा का वाचक है कि वहां- बेचारा कामदेव? साक्षान्मन्मथ -मन्मथः। जो जगत के मन को मथ देता है, उस मन्मथ का मन मदनमोहन ने मथ दिया! क्या करे बेचारा? शिव के मन में विकार आया, क्रोध आया तो काम को भस्म कर दिया था। रास में श्रीकृष्ण के मन में विकार ही नहीं आया, स्वामी हरिदासजी ने तो कहा -कोटिकाम ठगे। काम वहां पराजित है! रास सेक्स नहीं है। वासना का ज्वार नहीं है। पशुधर्म नहीं है। आत्मराज्य की बात है, चेतना की वह अवस्था, जहां मन और इन्द्रिय का शासन नहीं है।

वृन्दावन में पुरुषभाव का प्रवेश नहीं है। देहभाव को लेकर

सामान्यजीव की तो बात ही क्या ? स्वयं भगवानशिव भी (पुंभाव में) वृन्दावन में प्रवेश नही करते ! योगयोगेश्वर कैलाश पर समाधि में थे। समाधि में कृष्ण का रासनृत्य देखा, तो वृन्दावन पधारे, रास की प्रहरी थीं, गोपी। गोपी ने कहा, देवाधिदेव ! पुंभाव में आप रास में कैसे प्रवेश करेंगे ? नित्य-सिद्ध रागमय- शरीर पाये बिना रास में प्रवेश संभव ही नहीं है !! देहभाव का भावदेह में लय होना अनिवार्य है। भगवानशिव ने अपने को नारीभाव में विलीन कर दिया। गोपीश्वरमहादेव ! रास में शिव का आना गहरे अर्थों की ओर संकेत है। शिव कामारि हैं, कृष्ण मदनमोहन हैं।

क्या रासलीला देशकाल में घटित (ऐतिहासिक) घटना है ? सोलह- हजार गोपी, सोलह- हजार कृष्ण के रूप, छह महीने की रात ? क्या इतिहास ऐसा होता है ? इतिहास देश काल में बँधा होता है और लीला देश काल के परे होती है। रास इतिहास नहीं, लीला है। डॉ राममूर्ति त्रिपाठी के शब्दों में रास के तीन रूप हैं- रहस्यात्मक, रसात्मक और अनुकरणात्मक गोलोकस्थित नित्यवृन्दावन का नित्यरास रहस्यात्मक है। रसात्मक-रास द्वापर युग में ऋ्षावतार गोपियों के साथ वृन्दावन में अवतरित हुआ। ये दोनों अलौकिक हैं। तीसरा अनुकरणात्मक-रास है, जो अलौकिक वृन्दावन की प्रतिमा वृन्दावन में प्रकट होने से भजनों के प्रत्यक्ष अनुभव और आस्वाद का विषय है। रास उत्सव है उत्सव'' का एक रूप है। ''गीतगोविन्द'' के टीकाकारों ने रास को अनंगोत्सव या मदनोत्सव के रूप में पहचाना है। रास अनुष्ठान है ! अनेक प्रकार के अनुष्ठान हैं यज्ञ, याग, सन्ध्या, तर्पण, स्मरण और प्रार्थना। हमें अनुष्ठान के समय पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए तर्पण का समय मध्याह है। सन्ध्या दिन और रात की सन्धिवेला में होती है। प्रात: स्मरण ''रश्मिमाला'' का समय ब्राह्ममुहूर्त है यज्ञ-याग दिन के अनुष्ठान हैं, वैष्णवों में अष्टयाम है, आठ झाँकियाँ (मंगला, ग्वाल, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, संध्याआरती, भोग और शयन) समयबद्ध नित्य सेवा प्रणाली का अंग हैं। इसी प्रकार रात्रि में की जाने वाली उपासनाओं की अपनी एक विशिष्ट परम्परा है। लोक-जीवन में रतजगा ''या रात्रि जागरण देवी, भैरों और शिव पूजा से सम्बन्धित हैं। पञ्चरात्र पाँच रातों में सम्पन्न वाला अनुष्ठान था। नवरात्र नौ रातों में सम्पन्न होने वाला दुर्गा पूजा का उत्सव अनुष्ठान है। तन्त्रों में चार महत्वपूर्ण उपासना-रात्रियों का उल्लेख है-

''**कालरात्रिर्महारात्रिमोहरात्रिश्च दारुणा।**'' दारुणरात्रि होली की रात है, कालरात्रि शिवरात्रि है तथा महारात्रि दीपावली की रात है। यहाँ जिसे मोहरात्रि कहा गया है, वह रास की रात्रि है, शरद् पूर्णिमा की रात्रि। जिसमें चन्द्रमा और अन्य देवता भी मोहित हो गए। रास गुह्य-उपासना है, प्रकट-उपासना नहीं है। उसमें प्रवेश करने का अधिकार सभी का नहीं है। ''**गोपनादिष्ट्संपत्तिः सर्वथा परिसिद्ध्यति। कुलालपुरके पात्रमन्तर्वाष्पतया यथा!**''

रास को लेकर बुद्धिजीवी लोग तरह-तरह से बहस करते रहते हैं, उनके संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ ''मध्यकालीन धर्मसाधना'' [पृष्ठ 81] में लिखा है कि- ''हम जिस वातावरण में शिक्षित हुए हैं, उसने हमें प्राचीन-अनुश्रुतिक धारणाओं से लगभग विच्छिन्न कर दिया है। यदि पूरी तरह विच्छिन्न हो गये होते तो भी हम आधुनिक ढंग से सोचने की अनाविल दृष्टि पा सकते किन्तु हम उन आनुश्रुतिक-धारणाओं से पूरी तरह विच्छिन्न भी नहीं हो सके और उन्हें जानते भी नहीं हैं। नतीजा यह है कि श्रीकृष्ण का नाम आते ही हम यह तो सोच पाते हैं, पूर्णानन्द विग्रह पूर्णपुरुष किन्तु गोपियों के साथ रास की बात नहीं समझ पाते ! इस अधकचरी दृष्टि के कारण हम वैष्णवकवि की कविता को न तो तत्ववाद-निरपेक्ष रूप में देख पाते हैं और न तत्ववाद-सापेक्ष रूप में। पशु-पक्षी, कीट-पतंग: सर्वत्र युगल-तत्व है, सर्वत्र रमण है। जो सर्वत्र है, वह प्रकृति है। निसर्गसिद्ध है, सहज है। मनुष्य ने जब मूलसत्ता की खोज की तब उसने इतने व्यापक रूप में युगल-तत्व को देखा और सृष्टिव्यापार को उसने रास, सामरस्य, महामिलन, विहार और नित्यविहार के रूप में पहचाना। आनन्द तत्व को उसने मूलतत्व के रूप में देखा। क्या सब आनन्द को ही खोज रहे हैं ? यदि आनन्द से उसका पूर्वपरिचय न होता तो क्यों वह आनन्द को खोजता ?

रास-परंपरा के दो सूत्र बडे स्पष्ट हैं। एक शरद-रास, जिसका विस्तार भागवत में है। रास-परंपरा का दूसरा सूत्र गीतगोविन्द में है, जहां शरद-रास नहीं, वसंत-रास है। रास की अवधारणा के तानेबाने का एक सूत्र तमिल के आलवारगीतों (अंडाल) से जुडता है, दूसरा आगम-परंपरा की गुह्य-उपासना से, तीसरा भरतमुनि, अभिनवगुप्त आदि द्वारा संदर्भित आभीरों के हल्लीसक-नृत्य से। इसी के साथ लोकगीतों और लोकनृत्य की ओर जो संकेत नागार्जुन ने किया है, शशिभूषण दासगुप्त ने जोर देकर वही बात कही है। बाबानागार्जुन ने जयदेव के गीतगोविन्द का अपनी वाणी में रूपांतरण करते हुए उन गीतों को लोकगीतों की पृष्ठभूमि में देखा है। वे पूछते हैं, क्या संत सोलोमन के गीत नहीं हैं ? ध्यान देने की बात रास नृत्य-उपासना है, नृत्य ही उपासना है और उपास्य भी नृत्य है।

- 1828, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, सेक्टर-13-17
पानीपत-132203 (हरियाणा), मो.: 9996007186

■

आलेख

आजीवन कारावास को अभिशप्त कैदियों के जीवन में सुर और रंग भर रही है भोपाल की न्यू सेंट्रल जेल

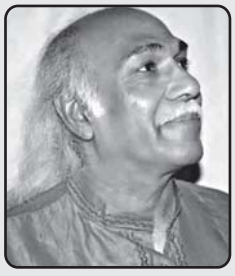

डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल

साहित्य, संगीत और कला की महत्ता सर्वविदित है। बिना किसी कला के ज्ञान के कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में समरसता नहीं ला सकता। महाराज भर्तृहरि का यह कथन कि **''साहित्यसंगीतकलाविहीनः, साक्षात्पशुः पुच्छविषाण हीनः''** मानव जीवन में साहित्य, संगीत और कला की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए पर्याप्त है। पाब्लो पिकासो के अनुसार भी– ''कला जिंदगी पर जमी धूल को हटाने का खूबसूरत माध्यम है।''

चित्रकला और संगीत जैसी सशक्त ललित कलाएं समाज के लिए कितनी उपयोगी होती हैं, यह बताने की अब अधिक आवश्यकता नहीं जान पड़ती। आज का सभ्य समाज इनके लाभों से भलीभांति परिचित है। संगीत के बारे में तो एक-से-एक किस्से जन-सामान्य तक की पहुंच में हैं। यह एक ऐसी कला है जो मरीज को स्वस्थ कर सकती है और अपराधी को भी सुधार सकती है। कलात्मक गतिविधियों में संलग्न रहकर खूंखार से खूंखार अपराधी तक इतना संवेदनशील बन सकता है कि वह समाज के लिए भी बहुत कुछ योगदान कर सकता है और स्वयं भी उपलब्धियों से भरा जीवन जी सकता है।

1960 के दशक में राजनीतिक बंदी रह चुके 'डार्कनेस ऑफ नून' के ब्रिटिश लेखक अर्थुर कोइस्ट्लर ने 'द कोइस्ट्लर ट्रस्ट' की स्थापना कर कैदियों और मरीजों के लिए जो कार्य किए हैं, उनकी मिसाल अन्यत्र कम ही देखने को मिलती है। प्रायः आम लोगों की धारणा कैदियों के प्रति अच्छी नहीं होती। जेल अधिकारियों तक में बहुत कम अधिकारी ऐसे देखने में आते हैं जो कि कैदियों को कला, संगीत, लेखन या अन्य कलात्मक गतिविधियों के माध्यम से सुधारने में मदद करने को अच्छा समझते होंगे। उनका कैदियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण ही अधिक रहता है। द कोइस्ट्लर ट्रस्ट कैदियों और मरीजों के द्वारा निर्मित कलाकृतियों की प्रदर्शनी लगाकर उन्हें बेचने और पुरस्कृत करने का कार्य भी करता है। कविता, कहानी, पेंटिंग और स्कल्पचर तक हर प्रकार की कृतियों को इस ट्रस्ट द्वारा स्थान दिया जाता है।

संभवतया कैदियों के जीवन में इसी प्रकार से सुर और रंग भरने की प्रेरणा से सन् 1992 में हमारे देश की भी एक जेल को कला और संगीत का मंदिर बना देने का स्तुत्य प्रयास किया गया, भोपाल की सेंट्रल जेल के तत्कालीन जेल अधीक्षक श्री पुरुषोत्तम सोम कुंवर जी द्वारा।

यूं तो मध्य प्रदेश की ही इंदौर, जबलपुर और देवास आदि कई अन्य जगहों की जेलों की प्राचीरों से भी संगीत की स्वर-

लहरियां गुंजरित होती सुनी जा सकती हैं किंतु भोपाल की न्यू सेंट्रल जेल की बात ही कुछ और है। मुझे वहां दो बार परीक्षक की हैसियत से जाने के सुअवसर प्राप्त हो चुके हैं। मेरी वहां की सबसे पहली यात्रा ही इतनी रोमांचक रही कि उसी पर मैं एक पुस्तक लिख सकता हूं।

बात सितंबर सन् 2014 की है। देश के प्रख्यात् कला एवं संगीत संस्थान ''प्राचीन कला केंद्र,चंडीगढ़'' से मेरे पास एक पत्र आया कि मुझे भोपाल की न्यू सेंट्रल जेल में चित्र कला एवं संगीत की प्रयोगात्मक परीक्षाएं लेने जाना है। पत्र के अनुसार अधिकतम 30 नवंबर तक यह कार्य पूर्ण कर लेने हेतु भी मुझे निर्देशित किया गया था। पत्र पढ़कर मैं चौंका भी, क्योंकि मैंने पहले कभी नहीं सोचा था कि जेलों में भी चित्र कला और संगीत की परीक्षाएं होती होंगी। ख़ैर! मैं एक ऐसा भाग्यशाली इंसान रहा हूं जिसे बचपन से ही संगीत, नाटक, चित्रकला, काव्य और साहित्य के प्रति अप्रतिम प्रेम रहा है। लगभग 52 वर्ष संगीत का प्रशिक्षण देते हुए पूर्ण होने जा रहे हैं। कुछ वर्षों तक चित्रकला का भी साथ-साथ प्रशिक्षण दिया। विगत चार दशकों से वर्ष में कई-कई बार विभिन्न संस्थाओं की संगीत और कला की विविध विधाओं का एम. ए. और पी-एच. डी. तक का परीक्षक होने के नाते मेरी व्यस्तता बनी ही रहती है। हर दूसरे-तीसरे माह परीक्षा-कार्य हेतु मेरा बाहर जाना लगा ही रहता है। अत्यंत व्यस्त रहने के कारण अपनी आदत के अनुसार पत्र पाते ही मैं तुरंत ही संबंधित संस्था के अधिकारी से बात कर परीक्षा की जल्द से जल्द तिथि भी तय कर लेता हूं और निर्धारित समय में कार्य को निपटा भी लेता हूं। अत: मैंने यहां के भी तत्कालीन जेल सुपरिटेंडेंट श्री एम. आर. पटेल को फोन लगाया और तिथियां निश्चित करने के लिए आग्रह किया। 26 एवं 27 नवंबर, 2014 की तिथियां निश्चित होते ही मैंने ट्रेन में रिजर्वेशन कराया और 26 नवंबर की सुबह ही भोपाल जंक्शन पहुंच गया। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार जेल के चित्रकला और संगीत के अध्यापक द्वय डॉक्टर शैलेंद्र हरि नामदेव एवं श्री इम्तियाज़ अहमद भी समय से पूर्व ही स्टेशन पहुंच गए और प्लेटफार्म पर मेरा इंतजार करते मिले। स्टेशन से बाहर निकलते ही नीली बत्ती लगी गाड़ी तैयार दिखी। हम तीनों उसमें सवार हुए और कोई 30-40 मिनट में गंतव्य तक पहुंच गए। वी.आई.पी. गेस्ट हाउस में थोड़ी देर में ही तैयार होकर नाश्ता लिया एवं हिंदी और अंग्रेजी के कुछ अखबारों पर नजर डाली। उस दिन मेरी हर आवश्यकता का ख्याल रखने के वास्ते आजीवन कारावास से उसी दिन रिहा हुए एक हरिजन बंदी की ड्यूटी इसलिए लगा दी गई थी कि विधिवत् रूप से उसे 26 जनवरी को छोड़ा जाना था और उसे तबला विषय से संगीत भूषण फाइनल ईयर की परीक्षा भी देनी थी।

सड़क के दोनों ओर फैले 152 एकड़ के विशाल भू-खण्डों वाले क्षेत्र में विस्तीर्ण जेल के विविध प्रोजेक्ट्स को देखकर मैं ही क्या, कोई भी हतप्रभ रह जाएगा। 100 से अधिक बन्दियों द्वारा बनाए डैम जैसे विशाल निर्माण से लेकर शिव-मन्दिर, हनुमान जी का विशाल विग्रह और गौशाला, सभी कुछ देखने लायक था। नौ वृक्षों के रूप में नवग्रहों की स्थापना, काग़ज़, कपड़ा, वस्त्र, कम्बल, हवाई चप्पल, कूलर, बड़े-बड़े दरवाज़े, सभी कुछ तो बनाते हैं ये क़ैदी।

कुछ समय बाद एक सज्जन आए और कहने लगे कि परीक्षा हेतु सभी तैयारियां पूर्ण हो चुकी हैं और आप चलिए। जैसे ही मैं गेस्ट हाउस से बाहर निकला तो मुझे लेने आए सज्जन ने कहा कि आप अपना मोबाइल यहीं छोड़ दीजिए क्योंकि जेल के अंदर इसे ले जाने की अनुमति नहीं होती। अत: मैंने मोबाइल गेस्ट हाउस में ही सेंटर टेबल पर छोड़ दिया और उनके साथ चल दिया। गेट के बाहर ही रजिस्टर पर एंट्री कर अंदर प्रवेश किया। थोड़ी दूर चलकर ही परीक्षा-भवन भी आ गया। यह परीक्षा-भवन कोई छोटा-मोटा कक्ष नहीं था बल्कि पूरा एक ऑडिटोरियम था। बीच में विशाल मंच और उसके अतिरिक्त भी साइड में अर्धवृत्ताकार एक छोटा मंच बना हुआ था। पूरा हॉल शानदार सजा हुआ था। परीक्षार्थियों के बैठने के लिए जमीन पर करीने से बिछायत की हुई थी। हमारे लिए सोफे पड़े थे, जिनके सामने सेंटर टेबल्स पर गुलदस्ते सुशोभित हो रहे थे। परीक्षा प्रारंभ होने से पहले जेल अधीक्षक श्री एम. आर. पटेल, जेलर श्री आर. के. चौरे, असिस्टेंट जेलर श्री एल. के. एस. भदौरिया सहित कोई सात अधिकारियों एवं कला व संगीत- शिक्षकों द्वारा अलग-

अलग बुके भेंटकर गर्मजोशी के साथ मेरा भव्य स्वागत किया गया। इसके पश्चात मंच पर स्थापित और कलाकार कैदियों द्वारा ही निर्मित मां सरस्वती के भव्य विग्रह की पूजा-अर्चना हेतु मुझे मंच पर ले जाया गया। बाकायदा विधि-विधान पूर्वक मुझसे पंडित जी द्वारा मंत्रोच्चारण के मध्य पूजा कराई गई, जिसमें लगभग 30-40 मिनट का समय लग गया। पंडित जी भी जब स्वस्तिवाचन करते हुए मेरे मस्तक पर कुमकुम का टीका लगाकर हाथ पर कलावा बांधने लगे तो मैंने भी रुपया 101/- अपनी जेब से निकालकर मुट्ठी में दबा लिया और जब उनके हाथ में देने लगा तो उन्होंने भी श्रीविग्रह के समक्ष ही उसे रख देने का इशारा कर दिया। अब मुझे यह समझते भी कतई देर नहीं लगी कि जो सज्जन पूजा करा रहे हैं, वह भी कैदी ही हैं। पूछने पर पता चला कि जेल में उनका नाम मदन पुत्र बंशीलाल दर्ज है। मेरी जिज्ञासा यह जानने की भी थी कि आखिर उन्होंने संस्कृत को इतने शुद्ध रूप में बोलने की शिक्षा कहां से ली। जानकारी करने पर पता चला कि मथुरा से ही गायत्री तपोभूमि की ओर से यहां आकर कैदियों को संस्कृत की शिक्षा दी गई थी। इतनी औपचारिकताओं के पश्चात् मुझे लगा कि अब शायद परीक्षा-कार्य प्रारंभ हो जाएगा, किंतु ऐसा नहीं हुआ। परीक्षा से पूर्व शायद जेल के अधिकारीगण कैदियों की संगीत गायन, वादन और नृत्य की वैसी योग्यता से मुझे अवगत कराना चाहते थे जिसका अनुमान परीक्षा लेकर लगाया जाना असंभव था। संभवत: इसी उद्देश्य से पहले साइड में अर्धवृत्ताकार बने छोटे मंच पर कैदी कलाकारों को उतारा गया। उनकी पहली प्रस्तुति समवेत स्वरों में गाया यह गीत था-

''है प्रीत जहां की रीत सदा, मैं गीत वहां के गाता हूं।
भारत का रहने वाला हूं, भारत की बात सुनाता हूं।।''

इस गीत की बेहतरीन प्रस्तुति से जेल का पूरा ऑडिटोरियम मानों देश-प्रेम के रंग में रंग गया, मैं खुद भी। कैदियों द्वारा प्रस्तुत इस गीत के पश्चात् सेक्सोफोन पर एक और कैदी को उतारा गया। मर्डर केस में आजीवन कारावास की सजा भुगत रहे इस कैदी का नाम जाहिद गुड़डू था। उसने सैक्सोफोन जैसे दुष्कर अंग्रेजी सुषिर वाद्य पर प्रसिद्ध हिंदी फिल्म गीत ''सत्यम् शिवम् सुंदरम्'' को बजाया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना ना रहा। गीत की एक-एक बारीकी को उसने जिस अदायगी से पेश किया, काबिले तारीफ था। मैंने बाद में इसका एक अति प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका के लिए इंटरव्यू भी लिया। एक कैदी ने पीपल के जैसे एक पत्ते को ही मुंह में दबाकर मुख-वाद्य की भांति उस पर फिल्मी गाने की धुन सभी हरकतों को लेते हुए बजाई। अन्य कई कैदियों ने भी अपनी गायन-वादन कला से मुझे चमत्कृत कर दिया।

इस कार्यक्रम के दौरान मेरे पास ही बैठे संगीत-शिक्षक श्री इम्तियाज़ अहमद ने मुझे बताया कि अभी मुख्य मंच पर भी प्रस्तुतियां होनी बाकी हैं। उन्होंने बताया कि 1992 में इस जेल की स्थापना के समय से ही श्री कृष्ण जन्माष्टमी के पावन पर्व पर हम लोग यहां शानदार झांकियों का प्रदर्शन करते हैं। झांकियों को बनाने का सारा कार्य हमारे चित्रकला के शिक्षक डॉ. शैलेंद्र हरि नामदेव के निर्देशन में केवल कैदी ही करते हैं। मेरे यह पूछने पर कि श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर्व को ही इस कार्य के लिए क्यों चुना? उन्होंने बताया कि जगत के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण कारागार (जेल) में ही जन्मे थे। इसी मान्यता के आधार पर हम लोग इस पर्व को ही सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। खैर बातचीत के मध्य ही मुख्य मंच पर पड़े पर्दे उठ जाते हैं और नौका विहार, मीरां बाई का श्रीकृष्ण के विग्रह में सशरीर समा जाना, पूतना-वध और कुब्जा का सुंदर नारी के रूप में परिवर्तित हो जाना जैसे दृश्य एक-से-एक सुंदर झांकियों के माध्यम से साकार हो उठते हैं। सभी झांकियां बेहद सजीव और चित्ताकर्षक थीं। साधारण-सी वस्तुओं का प्रयोग कर इन झांकियों को इतना सजीव और मूर्त रूप दे दिया गया था कि हर दृश्य बोलता-सा प्रतीत

हो रहा था। सभी झांकियां स्वचालित थीं। इसके पश्चात् इसी मुख्य मंच पर राई नृत्य सहित अनेक सुंदर और मनमोहक नृत्य-प्रस्तुतियां भी कैदियों द्वारा की गईं, जिनमें राई नृत्य की अनूठी प्रस्तुति तो आज भी मेरे मन में बसी हुई है। पारंपरिक वेशभूषा में सजे-धजे और वाद्य-यंत्रों को गले में लटकाए हुए इन कलाकारों की बेहतरीन प्रस्तुति ने मेरा मन मोह लिया। लग ही नहीं रहा था कि ये लोग प्रोफेशनल कलाकार नहीं हैं।

इस नृत्य-प्रदर्शन के दौरान जो एक नई बात मुझे जेलर साहब ने बताई, उसे जानकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बात यह थी

कि एक बहुत ही शानदार नृत्य कर रहे जिस कलाकार को मैं महिला कलाकार समझ उसकी प्रशंसा कर रहा था, वह महिला न होकर पुरुष था जो स्त्री-वेश धारण किए हुए था। उस समूह-नृत्य में जिस बंदिनी को रखा गया था, उसकी कुछ समय पहले ही जेल से रिहाई हो गई थी। ऐसे में उस हरफनमौला कलाकार को ही स्त्री-वेश धारण करा दिया गया था। मुझे अच्छी तरह से याद है कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस कलाकार की दो-तीन वर्षों बाद भी मैंने परीक्षा ली थी।

इस नृत्य के बाद भी रस-परिवर्तन के उद्देश्य से गायक हनी सिंह के पांच-छः गीतों पर कैदियों ने नृत्य प्रदर्शन कर वातावरण में मस्ती का संचार कर दिया।

यही नहीं, जेल के बैंड का प्रदर्शन भी यहां कराया गया जो काबिले तारीफ था। बैंड वादकों ने कार्यक्रम को शिखर तक पहुंचा दिया।

इतने कार्यक्रमों के बाद पहले संगीत की परीक्षा का कार्य प्रारंभ हुआ। कैदियों ने बहुत ही अच्छे ढंग से गायन और वादन की परीक्षा दी और पूछे गए सभी प्रश्नों के समुचित उत्तर भी दिए। जब जेलरों को भी परीक्षा देने के लिए परीक्षार्थियों के रूप में देखा तो मेरे विस्मय का ठिकाना न रहा।

संगीत की परीक्षाओं के पश्चात् मुझे चित्रकला-भवन ले जाया गया जहां पहले से ही सुसज्जित कैदियों की मूर्तिकला और चित्रकला की बानगी दिखाई गई। फिर हमने परीक्षा-कक्ष की ओर प्रस्थान किया। जब परीक्षा के समय मैंने उनके कैदी छात्रों की पेंटिंग्स देखीं तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

मुझे ध्यान है कि उस दिन जब मैं चित्रकला का इम्तिहान ले रहा था, जेल में ऐसा भी एक कैदी परीक्षार्थी था जो आजीवन कारावास की सजा भुगत रहा था लेकिन उसका चेहरा-मोहरा बिल्कुल नेताजी सुभाष चंद्र बोस जैसा था। मैंने उस लड़के को कहा - ''आप जरा अपनी पेंटिंग लेकर के आएं। देखूं कि क्या बना रहे हैं?'' सच मानिए, उस विद्यार्थी की पेंटिंग देखने के बाद मुझको लगा कि ऐसा क्या इसने पाप कर दिया जिसके कारण यह लड़का आजीवन कारावास की सजा भुगत रहा है? इसी बात को मेरे द्वारा पूछने पर वह निरुत्तर हो नीची गरदन किए खड़ा रहा। बार-बार पूछने के बाद भी जब वह कुछ नहीं बोला तो डॉक्टर शैलेंद्र ने मुझसे कहा की गुरुजी यह बेचारा इतना अभागा है कि होल लाइफ़ थ्रू आउट टॉपर कैंडिडेट होने के बाद भी आजीवन कारावास भोग रहा है। जब यह एम. बी. बी. एस. फाइनल कर रहा था तो अंतिम प्रश्न-पत्र के दिन इससे चिढ़ने वाले दो विद्यार्थियों ने इसको परीक्षा-भवन में जाने से रोका और चाकू लेकर इसको जान से मारने को आमादा हो गए। आत्मरक्षार्थ प्रतिकार करते समय छीना-झपटी में उनका वह चाकू इसके हाथ लग गया और इसने उन दोनों में वह घोंप दिया। परिणामतः वह वहीं ढेर हो गए और यह लड़का आज आजीवन कारावास की सजा भोग रहा है। इस पर मैंने उस समय तुरंत ही यह कहा कि- मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा कैसा न्याय है इस देश में, कि आदमी अपनी आत्म-रक्षा हेतु भी कोई विरोध नहीं कर सकता और यदि विरोध करते समय हत्या को आमादा व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की हत्या भी हो जाती है तो इसमें उसका दोष क्या है? यह लड़का निश्चित रूप से निर्दोष है और इसको जेल से बाहर होना ही चाहिए। मैंने दूसरे दिन जेल सुपरिटेंडेंट साहब से मुलाकात भी की और उस लड़के के लिए जो कुछ भी कहीं से मदद हो सकती हो, करने का अनुरोध किया। उनसे बातचीत में मुझे पता चला कि न केवल वह, न केवल उस बच्चे के गुरु, बल्कि वहां के स्टाफ सहित सभी लोग उस चित्रकार कैदी से बेहद प्रेम करते हैं और सभी की यह भावना है कि वह लड़का अपना वैसा ही जीवन जिए जैसा कि उसका अपना ज्ञान है, अपनी योग्यता है, अपना स्वभाव है; लेकिन दुर्भाग्य से वह विद्यार्थी मेरे 2 - 3 साल के बाद इसी जेल में परीक्षा लेने हेतु पहुंचने पर परीक्षा देते फिर मिला। खैर! यह तो रही एक कैदी विशेष की बात, लेकिन यदि मैं यह कहूं कि वहां चित्रकला के भी जितने कैदी छात्र थे, सभी की चित्रकला इतनी उम्दा और स्तरीय थी कि लगता ही नहीं था कि वे आजीवन कारावास भोग रहे कैदियों की पेंटिंग्स हैं। ये सभी चित्रकला के सच्चे साधक बन चुके थे।

भोपाल की सेंट्रल जेल में मुझे जो अनुभव हुआ, वह मेरे जीवन का बेहद संजीदा कर देने वाला अनुभव था।

सलाखों के पीछे छुपी कैदियों की साधना और अद्भुत सृजन देखकर शायद ही कोई पत्थर दिल इंसान होगा जो नहीं पिघलेगा। यहां मैंने अनुभव किया कि -सृजनशीलता समय, स्थान और परिस्थितियों की मोहताज नहीं होती।

जीवन में सारी उम्मीदों को खो चुके, काल-कोठरियों में कैद जिन लोगों की परछाईं से भी हम अपने को दूर रखना चाहते हैं, उनके अन्तस में भी भावनाएँ किस प्रकार हिलोरें मारती हैं; और यदि उनको थोड़ा-सा भी प्यार उड़ेलते हुए कुछ साधन मुहैया करा दिये जाएँ तो वे भी अपनी भावनाओं को संगीत, चित्रकला और मूर्तिकला जैसी ललित कलाओं के माध्यम से साकार कर सकते हैं और समाज में अपने आपको पुनर्स्थापित कर सकते हैं। आखिर कला भावनाओं का ज्वार ही तो है। अंग्रेज़ी के प्रकृतिवादी कवि

विलियम वर्ड्सवर्थ भी तो यही कहते हैं कि –

"Art is a spontenious overflow of the powerful feelings."

भावनाओं का ऐसा सहज उद्रेक किसी भी सहृदय के मन में हो सकता है, फिर चाहे वह कोई बंदी या कैदी ही क्यों न हो। भोपाल की सेंट्रल जेल शायद इस देश की इकलौती ऐसी जेल है जिसे हम केवल और केवल एक सुधार–गृह और कला के मन्दिर का दर्ज़ा दे सकते हैं। आजीवन कारावास की सजा काट रहे बंदियों के हाथों में बंदूक, पिस्तौल, चाकू, छुरों की जगह संगीत के वाद्य–यन्त्र अथवा कलम तथा कूची को देखकर हर किसी का मेरी तरह रोमांचित हो जाना स्वाभाविक ही है।

प्रथम बार के अपने इस प्रवास के दौरान मैंने तीन बार सम्बोधित किया कैदियों को पहला उद्बोधन परीक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व हुए कार्यक्रम के पश्चात् , दूसरा परीक्षा समाप्ति पर और तीसरा दूसरे दिन विदा लेते समय।

पहले उद्बोधन में जहाँ–जहाँ मैं भावुक हो रहा था, कैदी लोगों के अश्रु भी रुक नहीं पा रहे थे। इसीलिये मैं उसकी एक हल्की–सी झलक अवश्य प्रस्तुत करना चाहूँगा। मेरे उद्बोधन का प्रारम्भ कुछ इस प्रकार से था–

''प्रारब्ध के बन्धन में बँधे मेरे प्यारे बन्दी साथियो! यह आपका दुर्भाग्य है कि आपने कोई अपराध किया या आप अपराधी सिद्ध घोषित कर दिये गये और आज आप एक बन्दी के रूप में यहाँ मेरे समक्ष मौजूद हैं। अपराधी इस संसार में कौन नहीं है! सभी से कुछ–न–कुछ अपराध हो ही जाते हैं; किन्तु कुछ अपराध ऐसे होते हैं जो क्षम्य की श्रेणी में आते हैं, कुछ में थोड़ी–सी सज़ा दे देना ही पर्याप्त होता है और कुछ बिल्कुल अक्षम्य होते हैं। आप लोगों से भी संभवतया ऐसे ही अक्षम्य अपराध बन पड़े होंगे अथवा आप पर सिद्ध हो गये होंगे जिनके कारण आज आप जेल में हैं। संसार में न जाने कितने लोगों से अक्षम्य अपराध भी होते होंगे और होते हैं किन्तु उनके प्रारब्ध में यदि पकड़ से बचे रहना है तो वे बचे रहते हैं और कुछ ऐसे अभागे भी होते हैं जो इस प्रारब्ध के कारण ही निरपराधी होते हुए भी जेल की यातनाएँ सहने को मज़बूर हो जाते हैं। आप लोगों में भी दोनों ही प्रकार के लोग होंगे। आप सभी अपराधी हैं या नहीं, मैं इस चर्चा को नहीं छेड़ना चाहता क्योंकि इस संसार में जो पकड़ में आ गया वो चोर और जो पकड़ में नहीं आ सका वो साहूकार बना रहता है; हालाँकि पकड़ में एक दिन सभी आ ही जाते हैं। मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि आपको आजीवन कारावास की सज़ा हुई, यह आपका दुर्भाग्य था किन्तु आपको भोपाल की न्यू सेण्ट्रल जेल मिली, यह आपका सौभाग्य है।

अगर थे भी, तो आप पहले कभी अपराधी थे किन्तु अब नहीं हैं; यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। मैंने आपके कार्यक्रम देखते ही यह अन्दाज़ लगा लिया था कि आप सब भारतवर्ष के बेहद सम्वेदनशील और ज़िम्मेदार नागरिक हैं या बन चुके हैं।

आज आपके रोम–रोम में संगीत घर कर चुका है। आपकी रूह तक में संगीत समा गया है। अब तो आप चाहकर भी अपराध नहीं कर सकते। बोलो! है न यह बात?''

मेरे उद्बोधन के दरम्यान लगभग सभी कैदियों का अश्रुपात यह सिद्ध कर रहा था कि वे पहले चाहे जैसे रहे हों किन्तु कम–से–कम अब तो उनसे किसी अपराध की उम्मीद करना भी बेमानी होगा।

जेल में मेरा दूसरा उद्बोधन हुआ–परीक्षा की समाप्ति पर। इसमें मैंने सिर्फ़ एक परीक्षक की हैसियत से उनकी कमियों की ओर इंगित किया और कुछ अच्छी बातें सिखायीं भी। तबले से संगीत भूषण फाइनल की परीक्षा दे रहा वह युवक जो मेरी सेवा के लिये वी. आई. पी. गेस्ट हाउस में छोड़ा गया था, उसकी हालत तो बेहद ख़राब थी। उसे पास करना नामुमकिन था, किन्तु मेरी अन्तरात्मा बराबर मुझसे यही कहती रही कि क्यूँ न इसे कुछ मैं ही सिखा दूँ और पास कर दूँ अन्यथा उसकी अब तक की 5 वर्षों की पढ़ाई बेकार हो जायेगी। और फिर मैंने किया भी वही। उसे खूब सिखाया और पास भी कर दिया।

मेरा तीसरा उद्बोधन दूसरे दिन विदाई के समय था। मुझे बन्दी मूर्तिकारों द्वारा निर्मित राधा–कृष्ण की लगभग दो फीट की सुन्दर पोशाकों एवं श्रृंगार से सुसज्जित प्रतिमा जब विदाई के समय प्रदान की गयी तो मैं अपने अश्रुओं को रोक न सका और वे छलक ही पड़े। मैं बन्दियों के अन्दर छिपे कलाकारी के गुणों और उनके सौन्दर्य–बोध का कायल हो चुका था। मैं नि:शब्द और निस्तब्ध–सा हो चुका था, किन्तु कुछ तो बोलना ही था।

मैंने लड़खड़ाती ज़ुबान से उनकी कला और अपने प्रति प्रदर्शित किये गये बेपनाह प्यार के बदले आशीर्वाद के दो शब्द मंच से कहे और अपने दोनों ओर अश्रुपूरित नेत्रों के साथ नीचे खड़े बंदियों के समूह के उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

संपर्क: डॉ. राजेन्द्र कृष्ण संगीत महाविद्यालय एवं शोध–संस्थान
'संगीत–सदन', 94, महाविद्या कॉलोनी द्वितीय चरण,
मथुरा (उत्तर प्रदेश) 281 003, मो. न. 98972 47980, 88514 02815

■

आलेख

कला बड़ी या कलाकार

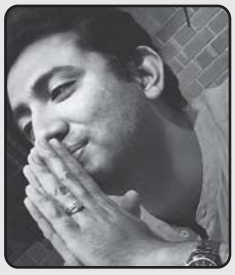

राजकुमार बेहरुपिया

कला बड़ी या कलाकार यह ऐसा प्रश्न है जिसने मुझे कुछ वर्ष पहले उद्वेलित किया था। परंतु कुछ समय पहले ही मैंने इसके कुछ उत्तर गढ़ लिए जो मुझे स्थिति और प्रसंग अनुसार कुछ शांति प्रदान कर सके।

आज अतिव वासुदेव 'किट्टू' की ''बड़े कलाकार'' शीर्षक से यह कविताएं पढ़ने के बाद वह सवाल फिर से सिर उठाने लगा, तो कला तो हर हाल में बड़ी है ही क्योंकि वह तो शास्त्र सम्मत है परंतु समय स्थिति अनुसार उसे छोटा बड़ा बनाता है वह कलाकार जिसके द्वारा अमूर्त को मूर्त रूप मिलता है जो पाठक दर्शकों में रस अनुभूति कराने का माध्यम बनता है जो न केवल रसिक श्रोताओं में बल्कि आमजन को भी प्रभावित या आकर्षित करता है। मेरा यह भी मानना है कि जब-जब कलाकार कला से बड़ा, बहुत अधिक बड़ा हो जाता है, जब उसे यह भ्रम या अभिमान हो जाता है कि यह सब उसने किया है और यही अंतिम सत्य है। तो वह कला का हित कम और अहित अधिक करता है।

फिर भी वह कलाकार तो है ही बाकी तो सब संचारी भाव हैं जो अत्यधिक सफलता के मद में कलाकार को चूर कर देते हैं और जब वह वापस धरती पर लौटता है तो उसे सत्य को स्वीकार करना ही पड़ता है।

परंतु किट्टू की कविता के ये बड़े कलाकार कौन है?

यह तो हरगिज़ नहीं है! गालिब और ज़ौक या तानसेन और बैजू बावरा के संदर्भ में यह तथ्य और आसानी से समझ में आते हैं लेकिन वह भी कलाकार तो थे ही, दरबारी होना या ना होना एक कारण हो सकता है, परंतु फिर भी वो कलाकार तो थे ही अपनी-अपनी विधा के, तो फिर किट्टू किन बड़े कलाकारों को उकेरना चाह रहा है?

फिर-फिर पढ़ता हूं कविता तो पाता हूं कि किट्टू के अंदर का कवि, जो उसके खून में है और चित्रकार भी, मुखर हो गया है, अंदर छुपा लावा उबलने लगा है, संस्कारों में बैठी कविता कुलांचे मार बाहर आ रही है और तथाकथित बड़े/ महंगे बिकाऊ/ पेंटर व संगीतकार का प्रतीक बनकर पन्नों पर फैल गई है।

शायद यह सब घटनाएं काल्पनिक हैं ना भी हो तो भी इससे कुछ अंतर नहीं आता क्योंकि किट्टू ने अपनी बात तो कह दी इस कविता के रूप में, बिना स्पष्ट स्टेटमेंट दिए। हां कुछ छंद और गेयता का उसे जरूर ध्यान रखना है, परंतु क्राफ्ट तो सीखा जा सकता है लेकिन जो नहीं सीखा जा सकता और जिसे सीखने या खोजने बहुतेरे कवि भटकते रहते हैं पहाड़ों पर समुद्र किनारे, वह तो उसमें कूट-कूट कर भरा है।

अब जो उसकी पोस्ट पर कमेंट पढ़ता हूं तो अचंभा होता है कि उसी कविता सरीखे चित्रकार या कुछ भी लिखकर उसे कविता कहने वाले, गज़ल जैसी पाबंद विधा जो पूरी तरह बहर वजन रदीफ़ काफिये में कैद है, वह कुछ भी लिखकर आजाद ग़ज़ल कहने वाले लोग इसे कविता नहीं एक बच्चे का सवाल कह रहे हैं और पिता को नसीहत दे रहे हैं कि सवाल सुलझाने का दायित्व पिता का था! हैरानी होती है कि वह खुद को एक्सपोज करने इस बहस में कूदे ही क्यों!

क्या होता है बड़ा कलाकार और इस कविता में किस बड़े कलाकार की बात हो रही है? संयोग से मैं संगीत नृत्य थिएटर इत्यादि से जुड़ा हूं लेखन, आलोचना और कविता में भी दखल

रखता हूं। मैंने कई कलाकारों को करीब से देखा है, जीवन यात्राएं संस्मरण पड़े हैं। कोरोना काल ने कुछ और गहरे उतरने का मौका भी दिया है। तो वह कलाकार जो इस जो इस विधा की राजनीतिक अकादमिक व्यवस्था इत्यादि में घुसकर व्यवस्था की कमियों का फायदा उठाकर किसी पिछड़े प्रान्त / जाति/जनजाति विशेष का टैग लगा कर कला में घुसपैठ करते हैं। वह है यह बड़े कलाकार। वह कलाकार तो होते हैं, कला के व्यवहारिक और शास्त्र पक्ष की जानकारी भी उन्हें होती है, परंतु उन्होंने एक मंजिल एक खास वजह को ध्यान में रखकर उस विधा को चुना होता है, आसान भाषा में कहें तो उन्होंने एक बड़ा कलाकार बनने के लिए यह कला चुनी होती है, बड़ा कलाकार बनने के लिए। बड़ा कलाकार बनना और होना यह दो मुख्तलिफ बातें हैं। बड़ा कलाकार तो होता है जो कला की साधना करता है, पूजता है, आराधना करता है, गुरु को सच्चे दिल से समर्पित होता है, और एक दिन वह कला उसे महान कलाकार बना

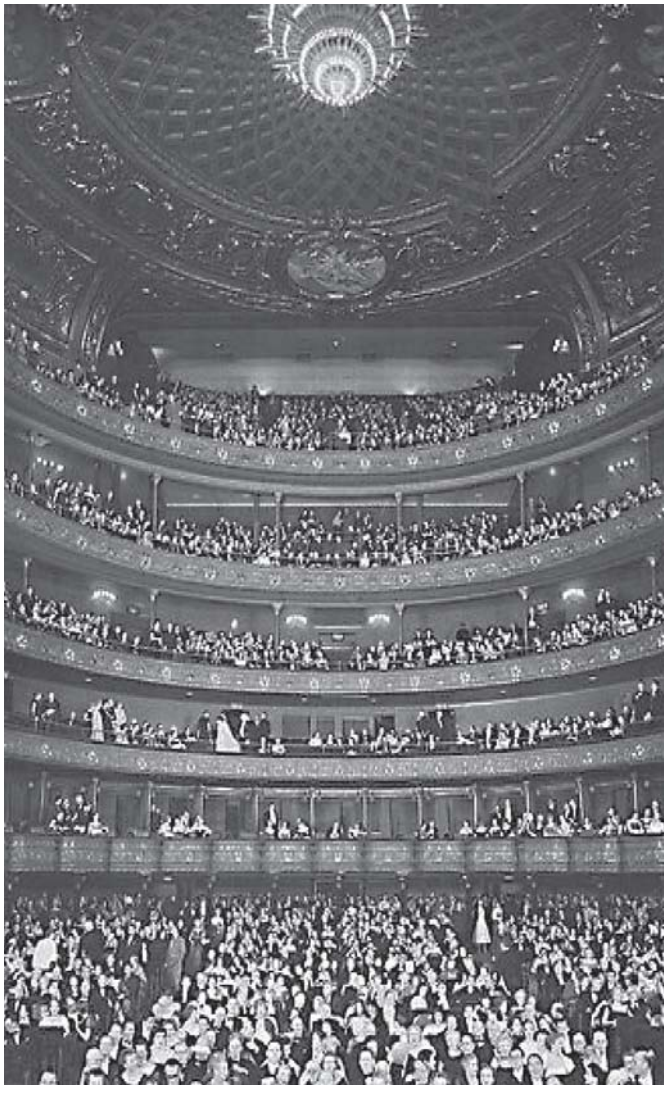

देती है। उनकी निशानी होती है कि उनके चेहरे पर होता है तेज, वाणी में सौम्यता, आंखों में शांति और संतुष्टि और हृदय में हर पल शुक्रिया की भावना ।

हां उनकी दाढ़ी शायद कुछ अव्यवस्थित होती हो, और ना हों उनके पास कपड़े बहुत चमकीले और शायद ना हो महंगी गाड़ी और चापलूस शागिर्दों की फौज परंतु जब भी वह कलाकार सितार पर मिज़राब, सारंगी पर गज़ या कैनवास पर ब्रश लगाये तो समय थम जाए और फैल जाए एक अदृश्य अलौकिक आभा आसपास। परंतु जो बड़ा कलाकार बनते हैं उनके जूतों के तिल्ले में, चमकदार कुर्ते खिली क्रीज़ में, मोतियों की माला में और हीरे की अंगूठी से टपकती है वह बनावट जो कहीं इनके अंदर भी गहरे दबी होती है।

वह रच लेते हैं अपने जैसा संसार ही अपने चारों ओर, और फायदा लेने देने वाले फैंस, महंगी गाड़ियां और अमीर बच्चों के शागिर्द जिनके द्वारा यह सब खुद पर इतरा सकें। मंच पर आते ही शुरू हो जाते हैं इनके नखरे और उस के बीच एक बच्चे का भयभीत होना समझ में आता है।

एक और मुख्य बात, कि शास्त्रीय संगीत, नृत्य, थिएटर या और इस तरह के समारोहों में, निस्संदेह एक गरिमामय शांति ज़रूर दरकार होती है, होनी भी चाहिए, लेकिन महान कलाकार अपनी साधना में वो पराकाष्ठा हासिल कर चुके होते हैं कि उन्हे अपने प्रदर्शन से पूर्व दर्शकों/श्रोताओं पर एक नियम की तरह उसे लादना/थोपना नहीं पढ़ता, बल्कि उनका पहला ''सा'' (षड़्ज) ही वातावरण में वो संदेश भेज देता है, मानो स्वर्ग के देवता भी अपना कार्य बीच में ही रोक कर, कान लगा कर वो सुने। निरीह भी और खुंखार जानवरों तक के भी संगीत में मंत्रमुग्ध होने के किस्से, किंवदंतियां यहां मशहूर हैं। यानि महान कलाकार के सुर की तासीर और व्यक्तित्व का आभा ऐसी है कि मासूम से मासूम बच्चे और पेड़ पौधों तक को भी प्रभावित/आकर्षित करे।

लेकिन तथाकथित बड़े कलाकार, चुकि उस आलौकिकता को, उस पराकाष्ठा को तो छूकर नहीं आये होते. लिहाजा उन्हें सच में अपने प्रदर्शन पूर्व वो मुर्दा शांति बहुत शिद्दत से दरकार होती जिसमें कुछ समय लिए उस कृत्रिम संसार की रचना कर सकें, जिसकी तकनीक से तो वाकिफ हैं पर आत्मा से कोसों दूर, और अगर ऐसे में कोई मासूम ये कह उठे के राजा तो नंगा है, तो फिर??

सच्चे साधक कलाकार के दो उदाहरण मैं आपको बताता हूं। नरेश गुलाटी जी को शायद याद हो। शायद सन 1992/93 में स्पिक मैके के जम्मू चैप्टर के एक कार्यक्रम में प्रख्यात बांसुरी वादक

रघुनाथ सेठ जम्मू पधारे, महिला कॉलेज परेड में उनका प्रदर्शन था, तानपुरे पर दो स्थानीय कलाकारों ने संगत की। परंपरा अनुसार संगीत की प्रोफेसर ने राग के उपरांत राग पहाड़ी की धुन की फरमाइश की। राग पहाड़ी का जम्मू से नाता है और फिर बांसुरी में तो कुछ अलग ही निखरता है। इस फरमाइश पर पंडित रघुनाथ सेठ जी की नजरें तानपुरा वादको से मिली, वो शर्म से झुकी थीं क्योंकि इसके पहले राग पहाड़ी ही बजा रहे थे परंतु उन्होंने इस बात को उभारे बिना पहाड़ी धुन सुना दी मुस्कुराते हुए, बिना किसी को शर्मिंदा किए हुए। यह होता है सही मायनों में बड़ा कलाकार।

एक और घटना जो लगभग 70 के दशक के आसपास की है, मेरे जन्म से पहले की पुरुषोत्तम कुमार जी से सुनी हुई है, कि शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्लाह खान साहब जम्मू में कार्यक्रम के लिए आए। आमंत्रित श्रोता शायद शास्त्रीय संगीत से लगाव नहीं रखते थे परंतु उन दिनों गूंज उठी शहनाई फिल्म की धूम थी क्योंकि उसमें खां साहब ने शहनाई बजाई थी। राग शुरू करते ही हाल में हूटिंग शुरू हो गई कि हमें राग नहीं सुनना, गूंज उठी शहनाई फिल्म का गीत सुनना है। खां साहब ने फिल्म के गीत की धुन को बार-बार बजाया स्थाई की तरह और इसी बीच अलाप तान इत्यादि सहित पूरा राग भी बजा दिया और आवरण रखा फिल्मी धुन का। यह होता है बड़ा कलाकार।

किट्टू, जियो बेटा तुम्हारी राह लंबी हो और मंजिल बस दिखाई दे और जब भी वहां पहुँचो तो मंजिल और
आगे बढ़ जाए कोई भी अंतिम सत्य तुम्हारी जिंदगी में ना हो
यही दुआ है हमेशा नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ते रहो

बड़े कलाकार

(1)

पेंटर ने कैन्वस पर पेंसिल फिरायी
और पास बैठा अंग्रेज़ बुदबुदाने लगा
कुलीन बुद्धिजीवी,
जो हलके संगीत और आकर्षक रोशनी से मंत्रमुग्ध रहे
गैलरी में टंगी पेंटिंगें निहार रहे थे
आधा दर्जन पेंटिंगे बिक चुकी थी...

विशेष आग्रह पर यह ''शक्ति सीरीज'' की
अगली कलाकृति थी
इस पेंटर के हस्ताक्षर तक
विदेशों में बिकते थे..
इनके प्रयोग किए ब्रुश की नीलामी
पिछले हफ्ते, लाखों में हुई
तमाम कोशिशों के बावजूद
मैं नासमझ
उन रेखाओं के अर्थ पहचानने में
असफल रहा....

(2)

ऑडिटोरियम में बच्चों का जाना मना था
एक बड़ा संगीतकार
पहाड़ों से अपनी संतूर सुनाने उतरा था
हालांकि वह रहता लंदन में था
और इन दिनों, नई धुन की खोज में
भारत में भटक रहा था...

श्रोताओं को सख्त हिदायत थी
शोर करना वर्जित है।
कि संगीतकार, शोर की पहली घटना के साथ ही
संतूर बजाना बंद कर देंगे

लगभग एक घंटे बाद, पंडित जी मंच पर आये
संचालक ने एक बार फिर
शान्ति की गुहार लगाई
सन्नाटा ऐसा था
मानों लोगों ने साँसें रोक रखी हों
वहाँ बैठकर मुझे, आनंद कम
भय की अनुभूति ज़्यादा हो रही थी...

(3)

आजीवन सोचता रहा
कैसे बनता है कोई, बड़ा कलाकार
पत्रिका के कवर पर फोटो वाला
और विदेशी पुरस्कारों से सम्मानित
कैसे बनते हैं उच्च पद के अधिकारी
लेखक, पेंटर, गायक या संगीतकार,
पापा से पूछा, तो उन्होंने बताया
यूँ तो बड़े बनने की प्रथा
आदिकाल में ही शुरू हो गयी थी
लेकिन मुगलों और अंग्रेजों ने
इसे लोकप्रिय बनाया
राजाओं, बादशाहों, अधिकारियों के
होते रहे अपने निजी, पसंदीदा कलाकार
लेखक लिखते रहे
शासक की प्रशंसा में लेख
और पेंटर बनाते रहे, ऐसे चित्र
कि शोर्य और गरिमा टपक-टपक आये

आज के समय में यही कलाकार
शांतिदूत बन
विदेशी सम्मेलनों में
देश का नेतृत्व करते हैं!

(4)

पंडित जी ने जैसे ही शुरू किया
संतूर
पीछे खड़ा गार्ड गुनगुनाने लगा ....

यह धुन एक पहाड़ी लोकगीत से ली गई थी
जो, गार्ड को थिरकने पर प्रेरित कर रही थी

फिर, वह क्षण आया कि उसने अचानक, ऊंची हेक लगा दी
इसके बाद
गार्ड, प्रोग्राम के दौरान दिखाई नहीं दिया
हैरानी की बात तो यह है, संतूरवादक रुके नहीं
एक शरारती मुस्कान के साथ
बजाते रहे, निरन्तर!

श्रद्धांजलि

ओ.पी. कुशवाहा
(वरिष्ठ काष्ठ शिल्पकार)
जन्म : 7 जुलाई 1944
निधन : 20 अगस्त, 2022

प्रो. बी.बी. लाल
(भूस्तर शास्त्री, इतिहासकार)
जन्म : 2 मई 1921
निधन : 10 सितम्बर, 2022

राजू श्रीवास्तव
(स्टैंडअप कॉमेडियन, अभिनेता)
जन्म : 25 दिसम्बर 1963
निधन : 21 सितम्बर, 2022

कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि...

आलेख

रंगो से सराबोर

प्रीति निगोसकर

रंगो का बेतहाशा खोजी और आकारो को बेहतरीन रूप से सजा केनवस की चौखट में न जाने कितने मेमोरी लैंडस्केप उतार आधुनिक चित्रकला में अपनी एक मंजिल रचता कलाकार जिसे आज लोग सचिदा के नाम से जानते हे।

कला का एक फ़क़ीर या फकीराना कलाकार कुछ भी कह लो, उसके सरल सहज व्यक्ति और व्यक्तित्व के पीछे का घोर संघर्ष, तपस्या और पागलपन सहज ही दिख पड़ता है।

बेंद्रे सर कहते थे घोड़ा बनाना हैं तो पहले घोडा बनना पड़ता है। उसी तर्ज पर निसर्ग को कला के लिए आत्मसात् करने का बेहतरीन उदाहरण है–सचिदा

याद आते है उनके पोर्ट्रेट्स के स्ट्रोक्स जो हरेक चेहरे का अलग अलग भाव चितेर देते थे। देश विदेश के हजारो स्केचेस्, दृश्यांकन.... चाहे पेन्सिल्स से बने हो, वाटर कलर या ऑइल में, यहाँ तक की मिक्स मिडिया तक में दृश्य का थ्रीडी दर्शन अनायास ही करा देते थे।

आज वह शिक्षा पद्धत्ति और वे गुरु जो संघर्ष करते भी थे और संघर्ष करना सिखाते भी थे– नहीं रहे। तब शिक्षा को खुद की मेहनत और लगन से ही प्राप्त करना पड़ता था। गुरु भी सिर्फ मार्गदर्शक थे। अपने संघर्ष से मार्ग ढूंढने तक का सफ़रऔर आगे अपनी कला को लेजाने का सफ़र.... अद्भुत और रोचक होता था। उस पीढ़ी के अंतिम कलाकारों में एक मध्यप्रदेश के सचिदा–अर्थात ''सचिदानंद नागदेव''

कला की हर विधा में माहिर, अपनी कला से विदेशो तक डंका बजाने वाले एक मात्र ऐसे देश के चित्रकार, जिन्होंने जापान के ''ओकासा त्रिनाले'' 1990 में ''यमियूरि टेलीकास्टिंग अवार्ड'' जीता। वो चित्र जापान के नेशनल आर्ट म्युजियम'' में है।

उन्होंने अपने कलाकार, शिक्षक और विद्यार्थी के रूप में बिखेरे रंगो से सजे कैनवास के पीछे की कहानी–सचिदा के कलागुरु ''पद्मश्री डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर''

जिनके गुणों को सचिदा ने आत्मसात् किया। उन्हीं की तर्ज पर सचिदा भी खाली जेब ज़ो झोला उठाकर चल पड़ते थे। रंग, ब्रश, कागज ले...बिना कुछ सोचे की कहा जाना है ? पैसे कहाँ से आएंगे ? ध्येय के पीछे पागलपन की हद तक जीने वालों की अंतिम पंक्ति में खड़े ये हमारे सचिदा थे।

उनकी कुछ रोचक यात्राओ को कुछ शब्दों में चित्रित करती हूँ। जिन यात्राओं ने उनकी कला और कलाकार को बनाया और इस

पेंटिंग : सचिदा नागदेव

मक़ाम तक पहुँचाया। अपने कलागुरु के साथ ''भारती कला भवन'' से ही ये यात्राएं शुरू होती हे। मांडू, उदयपुर, अजंता–एलोरा, उज्जैन, मालवा अंचल के विशेष गाँवो से होकर, अपने दो साथी मुजफ्फर कुरैशी और रहीम गुट्टी और सर के साथ, चम्बल नदी के डूब में आनेवाले ''शैल चित्रो'' की नक़ल करने के बहानें जंगल में रहने का अजीबोगरीब अनुभव उनके पास था साँची, खजुराहो से होती हुई यात्रा में सर के साथ कन्याकुमारी भी देखा। समंदर और दक्षिण के मंदिरो के कलात्मक गोपुरम और उत्कृष्ट मूर्तियो ने भी उन्हें अपनी ओर अध्ययन के लिए आकर्षित किया।

अगली यात्रा में अपने मित्र के साथ दिल्ली पहुचे। वहा कुतुबमीनार, लाल किले पर बैठ चित्र बनाये और उन्हें सस्ते में बेच धर्मशाला तक पहुँचे। देश हो या विदेश वहां के कलाकारों से मिलाना, वीथिका और म्युजियम देखना उनका प्रयास होता था। धर्मशाला में कुछ काम मिले। पहलगाँव में मकदुल घोड़ेवाले का चित्र बनाने से आगे जाने में बहुत मदद मिली। इस तरह के किस्सों से भरपूर जिंदगी का नाम सचिदा है।

नेपाल यात्रा के दौरान काठमांडू में सफल प्रदर्शनी आयोजित की। जर्मनी ,बेल्जियम ,फ्राँस, स्विट्ज़रलैंड, चेकोस्लोवाकिया, इटली जैसे अनगिनत यात्राओ ने कला और कलाकारो के अतीत ,वर्तमान से परिचित होने से सचिदा से कलाकार को भविष्य मिला।

कुछ समय दिल्ली में पुस्तकों के कवर् भी बनाए। जीवन यात्रा का अगला पड़ाव बना भोपाल, स्कूल शिक्षक बने। उसी दौरान भोपाल सांस्कृतिक केंद्र बनाने की तरफ चल पड़ा था। उसमे सचिदा सक्रिय सहभागी रहे। भले ही वे मौन सदस्य रहे हो, पर रज़ा जैसे विश्व विख्यात कलाकार को मध्यप्रदेश में बुलाने में महती भूमिका इनकी ही रही।

मकबूल फ़िदा हुसैन को अपनी ग्रे स्कूटर पर भोपाल की तंग गलियों में ले घूमना, लकड़ी की बेंच पर बैठ रास्ते के किनारे चाय की चुस्कियाँ लेना.....इन सबने भी अनजाने में ही इस कलाकार के जीवन में और भी रंग भर दिये। सचिदा जैसे कलाकार की अनगिनत और उस्फुर्त करने वाली रंगारंग कहानियाँ है। कम शब्दों में उनका रेखाचित्र/शब्दचित्र प्रस्तुत करने का मेरा प्रयास है।

रंगारंग संस्कृति और सभ्यता में भीगा हुआ ''उज्जैन''–वहाँ का रंगीन माहोल, जहाँ सचिदा का बचपन बीता। उज्जैन के ही ''भारती कला भवन'' में अकादमिक शिक्षा का प्रथम पाठ, पद्मश्री डॉ. वि.श्री.वाकणकर के प्रथम शिष्य बनने को मिला। इस प्रकार वे शिष्य ही नहीं अपितु उनके मानस पुत्र ही बन गए। यह उनका बहुत बड़ा सौभाग्य था, जिसने उनके भविष्य का मार्ग और कलाकार बनने की लकीर उनके हाथ पर खीच दी।

पैदाइशी कलाकार का तोहफा ले पैदा हुए सचिदा, दुकानों के बोर्ड बनाना, टींन पर विज्ञापन लिखना, फिल्मों के पोस्टर बनाना, कजली से चित्र बनाना, कांच पर चित्रकारी जैसी ट्रेनिंग लोकल गुरुओं से (जिन्हें उस समय पेंटर्स कहा जाता था)मिली। तब अपने गली, मोहल्ले, स्कूल में वे चित्रकार के रूप में पहचाने जाने लगे थे। सचिदा के बड़े भाई रमाकांत जी ने अपने भाई की प्रतिभा को पहचाना। उन्होंने एक बेंगन थमाँ दिया सचिदा को बनाने कहा–उस बेंगन की बनी हूबहू तस्वीर से उनके पापा को बेटे के कलागुणों की जानकारी मिली।

तब ही से मानों ये यात्रा गल्ली ,मुहल्ले के गुरुओं से होते हुए भारती कला भवन के वाकणकर सर तक पहुची। भारती कला भवन का पोषक वातावरण और सर का अभूतपूर्व मार्गदर्शन मिलते ही सचिदा धीरे..धीरे उड़ने लगे..और दुनियाँ घूम.... जगह जगह चित्रों की प्रर्दशनी लगा, धूम मचाने लगे.... परंतु बचपन में घर के सामने लगने वाले हाट में एक दिन–एक तम्बू में लगाई अपनी छोटी सी प्रदर्शनी को वे चकाचोंध वाली दर्जनों राष्ट्रीय ..अंतराष्ट्रीय गैलरीज में लगी प्रदर्शनियों के बावजूद उस स्मृति को नहीं भूल पाए थे।

कला और कलाकार .....शब्द का अर्थ सचिदा सही मायने में जीते थे। साहित्य, संगीत, वाद्य और चित्रकार, कला समीक्षक, गैलरी वाले हर तरह के अधिकारी वर्ग आदि विविध तरह के लोगों से उनका नाता उतना ही सहज था...जितना की रंगो से। उसमें देशी..विदेशी सभी लोग शामिल थे। विविध रिश्तों और आत्मीयता की घरेलु किस्म की डोर से बंधे सचिदा ...ये एक अलग विषय लिखने का हो सकता है। उनकी एक झलक ये भी.... वे थेट मालवी जैसे ....चटपटे स्वाद वाले खाने से मेहमान नवाजी करना पसंद करते थे।

जमीन से जुड़े इस इंसान की कहानी ''लाल रंग की इमारत और सचिदा'' उनके हर पहलू, हर मनोभाव को, हर प्रयास को अपनी लेखनी से साहित्यकार, आरकीटेक्ट उनके छोटे भाई ...नरेन्द्र जी ने बखूबी शब्दांकित किया हैं। यह शब्दांकन सचिदा का संघर्ष बया करता है। इस संघर्ष को पढना हम कला विद्यार्थियो को बहुत कुछ सिखाता, समझाता और भविष्य की राह अनजाने ही बता जाता है।

– 53, समाधान, एमआर 1, महालक्ष्मी नगर, इंदौर (म.प्र.)
मो. : 9755042296

■

आलेख

होली और संगीत की वैश्विकता

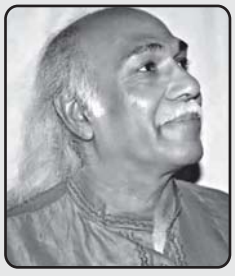

डॉ.राजेंद्र कृष्ण अग्रवाल

भारतीय सनातन संस्कृति सदा सर्वदा ''वसुधैव कुटुंबकम्'' की भावना से ओत-प्रोत रही है। यही कारण है कि परोपकार की भावना हमारी रग-रग में समाई रहती है। वेद हमारी संस्कृति के मूलाधार हैं और संस्कृति का एक अति महत्वपूर्ण अंग संगीत है, जो सामवेद से निकला है। परम् अवतार श्री कृष्ण को चारों वेदों में सबसे छोटा होते हुए भी सामवेद इसीलिए अति प्रिय भी है। तभी तो वे गीतोपनिषद् में कह उठते हैं कि-

''वेदानाम् सामवेदोऽस्मि''

पद्मपुराण के अनुसार संगीत की महत्ता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि भगवान् स्वयं अपनी हर समय उपलब्धता के संबंध में नारद जी द्वारा पूछे जाने पर कह देते हैं कि-

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

तो यह महत्व है संगीत का ।अब बात करते हैं होली की।

पावन प्रेम का प्रतीक पर्व 'होली' हमारे देश के सर्वप्रमुख एवं प्राचीनतम त्यौहारों में से एक है। यह पारस्परिक प्रेम और भाईचारे को बढ़ाने वाला त्यौहार है। इसमें छोटे-बड़े, राजा-रंक और अमीर-गरीब के सभी भेद मिट जाते हैं। समस्त वर्जनाओं के बन्धन शिथिल पड़ जाते हैं। पारस्परिक रागात्मकता का वातावरण बनाने वाला यह त्यौहार मानव-हृदय को इतना सरस बना देता है कि उसका अन्तर्मन हास-परिहास, मौज-मस्ती और मनोविनोद की हिलोरें लेने लगता है।

हिरण्यकश्यप के द्वारा अपने ही पुत्र नारायण-भक्त प्रह्लाद के उत्पीड़न की कथा अति प्राचीन काल से ही इस त्यौहार के साथ जुड़ी चली आ रही है। इसी प्रकार ढुंढा राक्षसी के आतंक की कथा भी इस त्यौहार के साथ सम्बद्ध है। यह पर्व जहाँ अधर्म पर धर्म एवं दानवत्व पर देवत्व की विजय का प्रतीक है, वहीं कृषि से भी इसका सम्बन्ध है। इन दिनों में फसल गहरा जाती हैं। धरा का धानी आँचल फलों से लद जाता है। होली पर ही नवान्न को भूनकर खाने का मुहूर्त किया जाता है। अपनी खुशी को प्रकट करने के लिए लोग गीत, वाद्य एवं नृत्य का सहारा लेते हैं। होली का नाम लेते ही राधा-कृष्ण एवं कृष्ण-गोपिकाओं की फाल्गुन मास की लीलाएँ तो मानों साकार हो उठती हैं। यूँ तो दो दिनों तक यह पर्व सम्पूर्ण भारतवर्ष में हर्षोल्लासपूर्वक मनाया जाता है किन्तु ब्रज की होली का तो कहना ही क्या ? विश्व के कोने-कोने का व्यक्ति यहाँ की होली की एक झलक मात्र पाने के लिए लालायित रहता है। रंग-गुलाल के साथ सामूहिक रूप से खेलने का यह पर्व संसारभर में मनाए जाने वाले सभी त्यौहारों

में सम्भवतया सर्वाधिक अनुपम, दिव्य एवं अनौखा है। ब्रज क्षेत्र में यह एक दिन या एक सप्ताह तक ही नहीं बल्कि बसन्त पञ्चमी से लेकर पूरे चालीस दिनों तक सम्पूर्ण वातावरण में रंग भरी उमंग पैदा कर, प्राणी मात्र के हृदय को झंकृत कर, फाल्गुनी मस्ती में मदमाता कर देता है। ब्रज चौरासी कोस में तो पूरे सत्तर दिनों तक यानि चैत्र मास की पूर्णिमा तक संगीत की समाजे बैठती है; रसिया दंगल और फूलडोल जैसे मेले होते हैं। मथुरा-वृन्दावन, नन्दगाँव-बरसाना, जाव-बठैन, फॉलेन जटवारी आदि की होली एवं दाऊजी का हुरंगा तो जगत्- प्रसिद्ध हो चुके है। संगीत में 'होली' और 'धमार' विशिष्ट

गायकियों के नाम है। 'धमार' नामक ताल में गाई जाने वाली गायकी 'धमार' कहलाती है। संकीर्ण जाति की यह ताल चौदह मात्राओं की होती है तथा इसमें क्रमश: 5–2–3–4 मात्राओं के विभाग होते हैं। धमार गायकी का गायन अधिकांशतया ध्रुवपद गायक ही करते हैं, क्योंकि यह गायकी ध्रुवपद की भाँति ही होती है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि इसमें ध्रुवपद की अपेक्षा गाम्भीर्य कम होता है। धमारों की भाषा भी ध्रुवपद की भाँति ब्रज, हिन्दी अथवा उर्दू होती है। इस गायकी में भी ध्रुवपद की ही भाँति लयकारियों का प्रदर्शन किया जाता है। यदा–कदा बोल–तानों का भी प्रयोग अनेक लयों के साथ कुछ गायक करते हैं। धमार ताल कठिन होने के कारण नव प्रशिक्षुओं को इसे सीखने में कुछ कठिनाई का अनुभव होता है। धमार गायन शैली में भी स्थाई और अन्तरा– दो ही भाग होते हैं। ध्रुवपद की भाँति इस गायकी की संगति में भी पखावज का प्रयोग किया जाता है। आचार्य पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने क्रमिक पुस्तक मालिका (छ: भाग) में अनेकानेक रागों में होली की धमारों की स्वरलिपियों दी है। यहां राग दरबारी कान्हड़ा में निबद्ध एक धमार दरव्य है –

मन्दर डफ बाजन लागे री।

आयो फागुन मास ।।

इस धमार का उल्लेख करने का एक विशेष कारण यह है कि विगत 51 वर्षों में मेरे अधिक नहीं तो 10– 20 शिष्य – शिष्याओं ने तो अवश्य ही यह पूछा है कि गुरुजी शब्द तो मंदिर है, फिर पुस्तक में मंदर क्यों लिखा है ? बात भी बिल्कुल ठीक ही है किंतु काफ़ी समय तक हम यह कहकर टालते रहे कि यह मुद्रण– दोष (printing mistake) है, किंतु इस पर चिंतन करते – करते जब यह सोचा कि मंदर शब्द को मंदर ही रहने देने में भी हर्ज़ ही क्या है ? मंदर (मन + दर) अर्थात् मन के दर (द्वार या चौखट पर जब डफ बजने लगे तो समझो कि फाल्गुन मास आ गया। यह मेरा अपना मत है। जिनको भाए वे ऐसा समझ सकते हैं। जहाँ तक होली गायन की अन्य विधाओं की बात है, ख़याल गायक जब होली सम्बन्धी रचनाओं को विभिन्न तालों में गाते हैं तो वे भी होली– गीत ही कहलाएंगी। ख़याल गायक ऐसी अन्य रचनाओं को तीनताल, कहरवा या दीपचन्दी आदि तालों में गाते हैं। इनमें गायक आलाप, तान, पलटे, खटके, मुर्की आदि का प्रयोग ख्याल की तरह ही करते हैं। धमार और होली की विषय–वस्तु एक ही होने के बाद भी दोनों ही गायकियों में बहुत अन्तर होता है। धमार में जहाँ गाम्भीर्य होता है वहीं ख़याल गायकों की होली में चांचल्य की प्रधानता रहती है। धमार जहाँ पखावज जैसे गाम्भीर्य युक्त वाद्य पर गाई जाती है, वहीं ख़याल की संगति हेतु तबला ही सर्वाधिक उपयुक्त वाद्य होता है। धमार और होली गायकियों के अतिरिक्त 'ठुमरी' नामक गायन शैली में भी होली की छटा खूब देखने को मिलती है। यथा–

बरजोरी करो न मोसे होरी में।

या

आज लंगर मारी, रंग डारी।

लोक–गीतों में भी 'होरी' नामक लोक–गीत बेहद पसन्द किए जाते हैं। 'होरी' नामक लोक–गीत का प्रिय ताल 'चाँचर' या 'चर्चरी' है। ब्रज़ में राग काफी की होरी बेहद लोकप्रिय हैं। ऐसी होरी पहले दीपचन्दी ताल विलम्बित लय में प्रारम्भ की जाती हैं और अन्त में द्रुत लय में लेने के लिए पूर्वाधारित ताल से हटकर अधिकांशत: कहरवा ताल में मोड़ दी जाती हैं, जो श्रोतागण को रस–विभूत कर देती हैं। यथा–

कैसी ये देस निगोड़ा, जगत होरी ब्रज होरा।

अथवा

होरी हो ब्रजराज दुलारे, प्यारे।

वैष्णव मन्दिरों की होली:

वैष्णव मन्दिरों में होली का प्रारम्भ बसन्त पञ्चमी से ही हो जाता है। यहाँ उसी दिन ब्रज–बालाएँ गा उठती हैं–

आई हम नन्द के द्वारे।

खेलत फाग बसन्त पञ्चमी, सुख– समाज विचारे।

– सूरदास

मन्दिरों में सन्तों द्वारा रचित विशिष्ट पदावलियों का गायन प्रारम्भ हो जाता है। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध इतिहासकार 'अबुल फ़ज़्ल' ने 'आईने अकबरी' में कीर्तनियाँ नामक संगीत–जीवी ब्राह्मणों की चर्चा की है और इनके प्रमुख वाद्य रबाब, पखावज और ताल या झाँझ बताए हैं। वर्तमान में रबाब जैसे ईरानी वाद्य का स्थान

फ्रांसीसी वाद्य हारमोनियम ने ले रखा है। मन्दिरों में होली के दिन तो प्रात: से सायंकाल तक होली के पद ही गाए जाते हैं। यहाँ तक कि शयन में भी 'कोऊ भलौ-बुरो जिन मानों, आज रँग होरी है' आदि भाव-पद गाए जाते हैं। वैष्णव-सम्प्रदाय के मन्दिरों में आज भी होली की समाज-गायकी का आनन्द लिया जा सकता है। पुष्टिमार्गीय या वल्लभ हार सम्प्रदाय के मन्दिरों में तो होली की धूम दर्शनीय होती है। इन मन्दिरों में कीर्तनियाँ 'हवेली-संगीत' (जिसे वास्तव में कीर्तन-संगीत या संकीर्तन-संगीत अथवा वैष्णव संगीत या मन्दिर-संगीत कहा जाना चाहिए) के अन्तर्गत होरी की धमारें तो गाते ही हैं, ब्रज की सर्वाधिक प्रसिद्ध लोक-गायकी 'रसिया' का गायन भी बड़े चाव से करते हैं। ब्रज का सर्वाधिक प्रसिद्ध रसिया है

आज बिरज में होरी रे रसिया ।
होरी रे रसिया, बरजोरी रे रसिया ।।

होली की रंगत में राधा-कृष्ण ही क्या, सभी देवगण रँग जाते हैं। भोलेनाथ शिव शंकर के सन्दर्भ में एक प्रसिद्ध होली गीत के बोल हैं-

मैं कैसे होरी खेलूँ री,
या बावरिया के संग।
अंग भभूत गले विष-माला,
लटन विराजे गंग।।

वास्तव में होली एक ऐसा त्यौहार है जिसमें देशकाल के समस्त बन्धन भी रसिकों द्वारा तोड़ दिए जाते हैं। भावनात्मक एकता की तो एक-से-एक अनूठी मिसालें इस त्यौहार पर देखने को मिल जाती हैं। किसी लोक कवि ने क्या अजब लिखा है-

मची होरी रे मची होरी,
राजा बलि के द्वार मची होरी
एक ओर खेलें कुमर कन्हैया प्यारे,
दूजी लंग राधा गोरी।।

मन्दिरों में गाए जाने वाले राग:

होली के दिनों में न अधिक गर्मी होती है और न अधिक सर्दी। मौसम शीतोष्ण रहता है, जो बड़ा ही सुहावना लगता है। अत: मन्दिर संगीत में ठण्डे एवं गर्म- दोनों ही प्रकार के रागों का पर्याप्त प्रयोग होता है। भैरव, विभास, पंचम, खट, ललित, देवगन्धार, सुघराई, रामकली, बिलावल, आसावरी, तोड़ी, जैतश्री, धनाश्री, काफी, सारंग, नट, पूर्वी, मारू, सोरठ, गौरी, रायसा, कल्याण, ईमन, हमीर, कान्हड़ा, नायकी, केदारा, जैजैवन्ती तथा बिहागड़ा आदि रागों में होरी की धमारें सुनी जाती हैं। धमार गायकी में गायक और पखावजी की मीठी छेड़-छाड़ भी होती है, जो सहज ही श्रोताओं के मन हर लेती है।

ऐसा भी नहीं कि होली की मस्ती में वियोग होता ही न हो। जब चहुँ ओर फाग की फुहारें पड़ रही हो किन्तु किसी प्रेयसी के पास उसका प्रियतम न हो तो उसके विरह की कल्पना भी सहज ही की जा सकती है। श्रीकृष्ण के विरह में फाग की चंद रचनाएँ तो इतनी मार्मिक हैं। कि उनको सुनते ही किसी भी सहृदय का फूट पड़ना या भाव-विह्वल हो जाना स्वाभाविक ही है। मीरां बाई के एकाध विरह के पद तो इतने मार्मिक और कारुणिक हैं कि सुनने वाले के नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित हो जाए । यथा-

होली पिया बिनु लागे खारी ।
सुनो री सखी मोरी प्यारी ।।

ब्रज में मथुरा के चतुर्वेदी समुदाय द्वारा होली के अवसर पर रात्रि को लोक तानें गाई जाती हैं। ढोलक, नक्कारा और ताल (कांस्य निर्मित स्तनाकार विशेष मंजीरा) की संगति के साथ ये चतुर्वेदी लोग बीच-बीच में नृत्य भी करते हैं। इनके कई अखाड़े मथुरा में प्रसिद्ध हैं। ये लोग सायंकाल नियत समय उन घरों पर पहुंच जाते हैं जहां नवजात शिशुओं (पुत्रों) ने जन्म लिया हो। तानों की रचना इन अखाड़ों के उस्ताद स्वयं करते हैं और संगीत भी स्वयं ही तैयार करते हैं। कभी-कभी इनमें सिने-गीतों की धुनों को भी यत्किंचित तोड़ मरोड़कर उपयोग में ले लेते हैं।

वाद्यों का प्रयोग:

जिस प्रकार होली में सभी प्रकार की वर्जनाएँ समाप्त हो जाती हैं और सभी धर्म, मज़हब, पंथ, संप्रदाय और जात-पात के भेद त्याग घुल-मिलकर इस त्यौहार को मनाते हैं, उसी भाँति होली में सभी प्रकार के (चतुर्विध) वाद्य-यन्त्रों के प्रयोग का उल्लेख भी मिलता है। अष्टछापी काव्य में श्री कृष्णदास जी विरचित होली के एक ही पद चल री सिंह पौर चाँचर मची जहँ खेलत ढोटा दोय में लगभग 30 वाद्यों का उल्लेख मिलता है, जो होली में सभी प्रकार के वाद्यों के प्रयोग को दर्शाता है। वैसे मध्यकाल में ब्रज में होली में जो वाद्य-यन्त्र प्रचलित थे, उनमें प्रमुख इस प्रकार थे- चमेली, हुदुक्का, उपंग, अपंग, चिकाड़ा, अलगोझा, ताल, मुरचंग, खुरचनी, चन्द्रपिरई, सूर्यपिरई, घड़ा, नक्कारा, पखावज, सारंगी, जलतरंग, स्वरमण्डल, रुद्र वीणा, किन्नरी, रबाब, अमृत कुण्डली, यन्त्र (जन्त्र), बाँसुरी, सिंगी, शंख, मादिलरा, रुंज, मुरज, डमरू, दिमदिमि, डिमडिमी, चंग, डफ, खंजरी, मंजीरा आदि।

समय के प्रवाह में कुछ वाद्य यन्त्र बिल्कुल ही विलुप्त हो चुके

हैं और कुछ विलुप्ति के कगार पर हैं, फिर भी जितने भी वाद्य-यन्त्र उपलब्ध हैं, होली के रंग-बिरंगे त्यौहार में आज भी बजते ही हैं। अब तो पाश्चात्य विविध वाद्य व की-बोर्ड तथा ऑक्टोपैड जैसे इलेक्ट्रॉनिक वाद्य भी ऐसे घुलते-मिलते जा रहे हैं कि अब उनका नकारना भी बहुत मुश्किल है।

मुग़ल शासन में होली:

मध्यकालीन इतिहास के अनुसार होली का हल्ला और धमारों की धमक लोक-जीवन या मन्दिरों तक ही सीमित नहीं रहीं, बल्कि मुग़लकालीन राज दरबार एवं संगीत-सभाओं में भी होली की रंगीनियाँ छाई रहीं।

होली के दिन जलालुद्दीन बादशाह अकबर विशेष रूप से अपने दरबार में आयोजन रखते थे। हरम में जाकर होली खेलते थे। बेग़म अपने बादशाह को गुलाल का टीका लगाकर रंग-गुलाल की वर्षा करती थी। जवाब में बादशाह अकबर भी बेग़म को रंग-गुलाल से सराबोर कर देते थे। अकबर को होली का त्यौहार बहुत प्रिय था। 'तुजुकी जहाँगीर' में उल्लेख है कि बादशाह जहाँगीर भी होली खेलने के बेहद शौक़ीन थे। शाहजहाँ के दरबार में भी होली की धमालें मचा करती थीं। और तो और औरंगजेब जैसा संगीत और संगीतज्ञों से घृणा करने वाला क्रूर शासक तक मंगलामुखियों के साथ 'धमारी' खेलता था। मुहम्मद शाह तो होली के रंग में ऐसे रंगे कि 'रंगीले' के जे नाम से ही प्रसिद्ध हो गए। यही नहीं, इनके दरबारी गायक सदारंग ने तो अपनी अनेक रचनाओं में सदारंगीले मौमद शाह (मौहम्मद शाह) लिखकर साहित्य सेवियों को यहां तक भ्रमित कर दिया है कि बहुत से लोग यहां तक लिख देते हैं कि मोहम्मद शाह रंगीले बहुत कुशल रचनाकार थे।

अस्तु नवाब वाजिद अली शाह नौ दिनों तक होली का त्यौहार मनाते थे। शानो-शौकत के साथ शाही महल सजाया जाता था। केशर मिश्रित रंग तैयार किया जाता था। चाँदी की सुन्दर तश्तरियों में रंग-गुलाल एवं पिचकारियाँ सजाकर रखी जाती थीं और फिर प्रारम्भ होता था महल की शहजादियों के साथ आम बालाओं का होली खेलने का ऐसा दौर, जहाँ केवल और केवल होता था उन्मुक्त, रंगीन और स्वच्छन्द वातावरण। नृत्य-गान से महफ़िलें सज उठती थीं। सदारंग, अदारंग, मनरंग और नूररंग आदि अनेक कलाकारों ने होली के रम्य चित्र अपनी गेय रचनाओं के माध्यम से उकेरे हैं। अनेकानेक अज्ञातनाम रसिकों ने भी इस प्रकार की रचनाओं में श्रीवृद्धि की है। उस समय दरबारों में बीन अर्थात् वीणा और पखावज का प्रयोग होता था।

फ़िल्मों में होली:

भारतीय सिनेमा भी होली के रंगों से अछूता नहीं रहा है। फ़िल्मों में भी एक-से-एक सुन्दर होलियाँ गाई गई हैं। फ़िल्म 'मदर इण्डिया' का होली गीत **होली आई रे कन्हाई, रंग छलके, सुना दे ज़रा बाँसुरी** तो आज भी लोगों को बेहद प्रिय है।

जहां तक नृत्य की बात है, होली का त्यौहार इससे भी कैसे वंचित रह सकता है? ब्रज ही क्या, समस्त भारत में प्रचलित कथक, भरतनाट्यम, कथकलि, ओडिसी, कुचीपुड़ी, मणिपुरी आदि शास्त्रीय नृत्य शैलियों से लेकर भाव और लोक-नृत्य शैलियों में होली-नृत्य पर्याप्त मात्रा में देखे जा सकते हैं। उत्तर प्रदेश के ही पूर्वांचल में प्रचलित ठुमरी गायकी तो होती ही भाव और नृत्य प्रधान है। अत: कथक नर्तकों को तो होली नृत्य करते हुए खूब देखा जा सकता है। रासलीला तो गायन, वादन और नृत्य तीनों ही विधाओं को अपने में समेटकर और सहेजकर चलने वाला सर्वाधिक प्रसिद्ध और पवित्र लोक नाट्य है। उसमें होली संबंधी लीलाओं के समय होली-नृत्यों (आ की छटा से भला कौन परिचित नहीं होगा? ब्रज के लोक कलाकर लठामार होली के प्रदर्शन में भी नृत्य करते देखे जा सकते हैं।

भारतवर्ष के कोने-कोने के ग्रामवासी तक अपनी-अपनी भाषा और बोली में अपने-अपने रीति-रिवाज के अनुसार होली के पावन पर्व को गीत, वाद्य और नृत्य की त्रिवेणी में आपादमस्तक डूबकर मनाते देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि होली जनमानस को रसाप्लावित कर देने वाला एक ऐसा त्यौहार है जो राग और अनुराग, गीत और संगीत, समता और सरसता का समस्त वातावरण में ऐसा रंग बिखेर देता है जो सम्पूर्ण समाज को न केवल आह्लादित कर देता है, बल्कि सामाजिक एकीकरण की सरस रसधार प्रवाहित करते हुए सभी संस्कृतियों को भी अपने में समाहित कर 'वसुधैव कुटुंबकम्' की सनातन भावना सहृदयों के मन में भर देता है। सनातन संस्कृति की रक्षा का जो दायित्व होली का पावन पर्व निभाता चला आ रहा है, उसी दायित्व का सदियों से संगीत भी निर्वहन कर रहा है। यह सबसे बड़ी समझने की बात है। आज दिग्भ्रमित भारतीय समाज और सम्पूर्ण विश्व को भी होली और संगीत की इस पावनता और महनीयता से सीख लेने की बहुत आवश्यकता है।

लेखक - संगीतज्ञ, लेखक, सम्पादक, कवि है।
''संगीत-सदन'', 94, महाविद्या कॉलोनी, मथुरा 281001(उ.प्र.),
मो. 9897247880

■

राहुल श्रीवास की कृतियाँ

वाद्य यंत्रों की प्रतिकृतियाँ, वेस्ट से बेस्ट के नमूने अपने आप में अनोखे है। बची हुई लकड़ी व रद्दी कागजों से बने वाद्य यंत्रों का संक्षिप्त रूप हैं जो राहुल श्रीवास ने बनाये है।

मो.: 9200300006

बाँसुरी

वीणा

बाँसुरी, तबला एवं माईक

माईक

हारमोनियम

सितार

सारंदा

तानपुरा

मयूरी वीणा

तबला

रबाब

दिलरूबा

वायलिन

गिटार

मेंडोलिन

सरोद

डीजेम्बे

गिटार

हुनर वीथि

सारंगी

वायलिन

एक ब्रश राष्ट्र के नाम

हुनर वीथि

लता श्रीवास

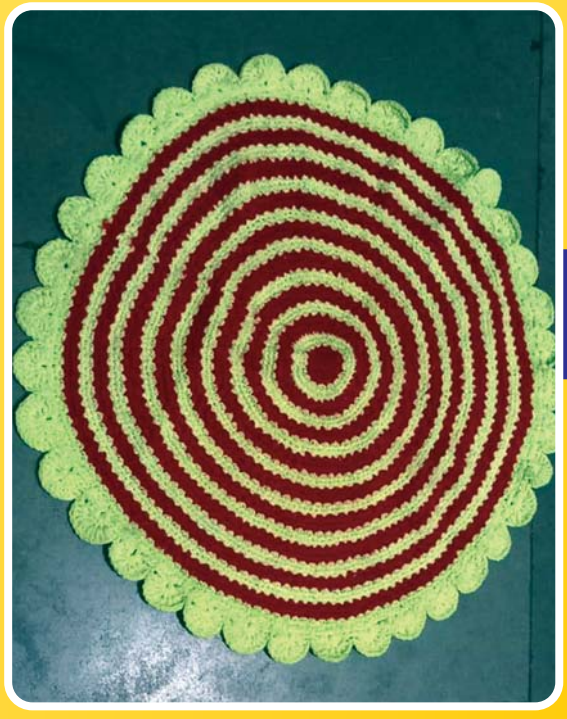

आसन : 1

आसन : 2

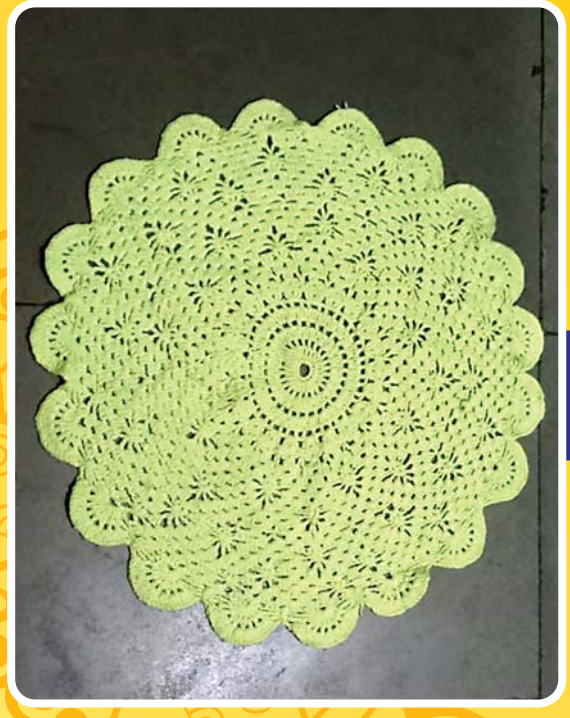

आसन : 3

ऊन की बुनाई हो या धागे की कढ़ाई या फिर सिलाई हो या आसन, तोरण बनाने की विविधता के बीच इस बार लता श्रीवास द्वारा की गई कलाकारी के नमूने।

मो.: 9200300006

डॉ. आर. चेरन की कविताएं

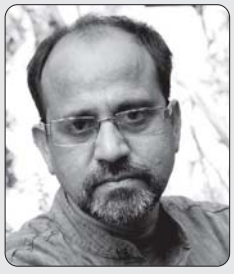

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रति: शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

आर चेरन (डॉ चेरन रुद्रमूर्ति) तमिल-कैनेडियन शिक्षाशास्त्री, कवि, नाटककार, और पत्रकार हैं। वे विंडसर विश्वविद्यालय कैनेडा में प्रध्यापक हैं। उन्होंने अभी तक तमिल भाषा में पन्द्रह किताबें लिखी हैं और इनका अनुवाद मलयालम, तेलगु, कन्नड़ और बंगाली सहित बीस से अधिक भाषाओं में हो चुका है। उनके काम का एक बढा हिस्सा अंग्रेजी भाषा में भी अनुदित हो चुका है। अभी हाल ही में उनकी किताब ''इन ए टाइम ऑफ बर्निंग'' (आर्क पब्लिकेशन, यू के) भी अनुदित हुई है जिसमें आम जन पर हो रहे अत्याचार, उनकी वेदना और आघात की प्रभावी अभिव्यक्ति है।

रेखांकन : प्रियेश मालवीय

मिट्टी -1

वह जो निकल गया एक लम्बी यात्रा पर
उसके बच्चे को इसकी खबर नहीं।
कोई दिशा पकड़ ली, कोई सड़क भी
धुएँ से भरी हुई दूर तक।

समुद्र यदि जुदा होकर यह राज खोल दे
तो आँसुओं से भर जाएगा यह रास्ता।
उदय होते ये सूर्य किस काम के
जो खो चुके हैं अपनी चमक।

मैं अपंग की तरह खड़ा था
किसी मैन्ग्रोव दरख्त के नीचे।
सांझ उतरती है ; भोर होती है
रक्त फैल जाता है धरती पर।

क्या वह शिशु तुम्हारा था
जिसे उठाकर ले गए समुद्री पक्षी ?
स्वप्न की घुलनशील लहरों के किनारे
चाँद दिखता है ?

मिट्टी- 2

खारापन लिए समुद्री हवाएं
जलती झोंपड़ी,
आवाज़
बेसुरा विलाप;
हमारी वेदना का आनंद लेते
धप - धप करते जूते।

अपने पैर खो देने के बाद, एक स्त्री स्वप्न देखती है

अपने पैर खो देने के बाद,
एक स्त्री स्वप्न देखती है
बच्चों को
अपनी छाती से चिपकाने का।

अपने बच्चों को खो देने
समुद्र, जंगल
और जमीन को बलिदान कर देने के बाद
एक स्त्री
किसी भी चीज़ का स्वप्न नहीं देखती।

जिन्होंने खो दी है अपनी नींद
अपनी स्मृति खो चुके हैं।

गीत

यतीन्द्रनाथ राही के गीत

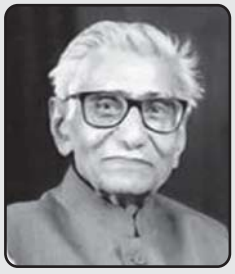

यतीन्द्रनाथ राही

जन्म - 31 दिसम्बर 1926, भारौल, जि. मैनपुरी, (उ.प्र.)
प्रकाशन : अनेक समवेत काव्य संकलनों, पत्र-पत्रिकाओं, इंटरनेट, आकाशवाणी, दूरदर्शन से, स्फूट रचनाएं, समीक्षाएं, भूमिकाएँ, आवरण आलेख आदि । काव्य संग्रह- 1. पुष्पांजलि 2. बाँसुरी 3. दर्द पिछड़ी, ज़िन्दगी का 4. बाँहों भर आकाश 5. कहरीले, झरोंखों से, अब तक 18 कृतियाँ
संपर्क : ए-54, रजत विहार, होशंगाबाद रोड, भोपाल-26, मो. 7725004444

बैठे रहो न कुछ तो गाओ!

ओढ़े दर्द, बिछाये सपने
पग-पग काँटे
डग-डग खंदक
रुके नहीं हम
झुके नहीं हम
बढ़ते रहे सदा ही अनथक
दायित्वों ने दस्तक दी है
फिर ऊर्जा के स्रोत जगाओ !
कितनी बड़ी आपदाओं को
मुस्कानों के साथ जिया है
बाँटा है जग को अमृत ही
खुद, चाहे विषपान किया है
फिर सागर मन्थन के दिन हैं
कल्याणी संकल्प उठाओ !

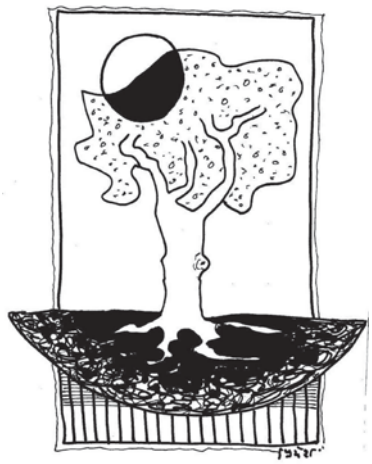

रेखांकन : प्रियेश मालवीय

प्राणों के माथे संकट है
साँसों की सौदेबाजी है
बिके हुए ईमान-भरोसे
यह पंडित है, वह काज़ी है
सबका सुख
सबका हित चिन्तन
निर्मल प्यार सुधा छलकाओ !

दिन गुमसुम के ?

लौटेंगे फिर कब वंशी स्वर
गलियों की
खोयी किलकारी
होगी फिर कब भोर सिंदूरी
रातें कब होंगी उजियारी
टिमकेगी ढोलक आँगन में
झमकेंगे सोहर के ठुमके ?
बीतेंगे कब दिन गुम सुम के
आग लगी है जंगल भर में
चीख रहे हैं वृक्ष लताएं
हाथ छोड़कर दूर खड़ी हैं
पत्र-पुष्प-फल से शाखाएं
रुदन हो रहा पिक के स्वर से
अमराई रोती सिर धुन के
खाली हाथ पसारे अम्बर
धरती शर्मसार लगती है
ममता-प्यार मोह नातों की
दीवारें पल-पल ढहती हैं
तरस गये रेशम के धागे
बन्धन
रोली के कुमकुम के।

वे दिन

वे दिन भी
क्या दिन थे अपने ।
कभी किताबों के पन्नों में
हम गुलाब के फूल हुए थे
हमने भी उड़ना सीखा था
हमने भी आकाश छुए थे
कितनी प्यार-भरी दुनिया थी
कितने रंग भरे थे सपने !
अलक जाल थीं कभी घटायें
जेठमास में बरसे सावन
ऋतुएँ अपने साथ चली थीं
दिन थे वे कितने मन भावन
किलकारी भरती
खुशियाँ थीं, व्याकुल
बाँहों में आ बँधने
सुर्ख ओठ के पारिजात से
फूल चुने थे अँजुरी भर-भर
देह-गन्ध की छुअन ज़रा सी
रोम-रोम कम्पित थे थर-थर
अब इन पत्थर उंगलियों से
यादों के मनके हैं जपने !

■

कविता

दुर्गाप्रसाद झाला की कविताएँ

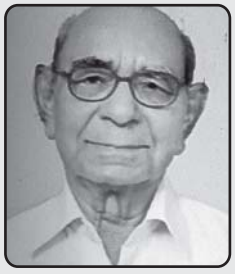

दुर्गाप्रसाद झाला

जन्म - 18 जनवरी 1933, गंधर्वपुरी, जि. देवास (म.प्र.)
प्रकाशन : प्रगतिशील हिन्दी कविता (शोध प्रबंध), रचना की अतंर्यात्रा (समीक्षा), चेतना के स्वर (कविता), बहती है एक नदी (कविता), अक्षर और आदमी का रिश्ता (कविता), काल यात्रा (कविता), समय और समय (प्रतिनिधि कविताएँ), सृजन यात्रा (सम्पादित कृति)
संपर्क : सृजन-19, स्टेशन रोड शाजापुर (म.प्र.)
मो. 9407381651

आवाज़

आवाज़
हवा में ही रोक दी जाती है
नहीं पहुँच पाती
किसी के कानों तक

न किसी वृक्ष की डाल का पत्ता
लहराता है
न दूब को मिल पाती है
ओस की बूँद

न वह चिड़िया के पंखों पर
सवार होकर
पहुँच पाती है घर-घर
न किसी का दरवाज़ा ही

रेखांकन : प्रियंका मालवीय

खटखटा पाती है।
जैसे एक तारा
टूट जाता है और
किसी को पता तक नहीं चलता
इसी प्रकार वह अंधेरे में
खो जाती है

जब तक वह आवाज़
अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़
एक सिपाही की तरह
लड़ने का साहस न जुटायेगी

इसी तरह
एक सुनसान में
बस अपने को ही
सुनती रहेगी
और सिर धुनती रहेगी।

एक तारा

एक रात एक तारा
आसमान छोड़कर
धरती पर आया मेरे पास
बोला-
मैं धरती पर रहना चाहता हूँ

''क्यों ?''-
मैंने पूछा
बोला-
मुझे मिट्टी की महक पसंद है

मैंने कहा- स्वागत है
तुम फूल बन जाओ
पर तुम्हें
खिल-खिल कर झरना
और झर-झर कर खिलना
बार-बार होगा

फिर बिना कुछ कहे
वह फूल बन गया।

लिखो कलम

लिखो कलम
मेरे उस दर्द को लिखो
जो झनझनाता रहता है।
मेरे माथे में और
जिसे मेरे अलावा
और कोई नहीं जाने।

लिखो
मेरी उस खुशी को लिखो
जो मेरे अधरों से होती हुई
सबके अधरों पर छा जाये।

लिखो
मेरे उन सपनों को लिखो
जो मेरी आँखों में
कभी सूरज की तरह
तो कभी चाँद-तारों की तरह
झिलमिलाते रहते हैं
हमेशा हमेशा।

लिखो
उन शब्दों को लिखो
जो मेरी आत्मा की
आवाज़ बनकर
हवा में लहरायें
और घर-घर जाकर
हर आत्मा की
आवाज़ बन जायें।

लिखो
लिखो कुछ ऐसा
कि मैं उसे बाँचता रहूँ बार-बार
और पहचानता रहूँ
अपने आपको कि
मैं क्या हूँ ?
कौन हूँ ?
आदमी हूँ
या
कोई और ?

■

ग़ज़ल

महेश कटारे 'सुगम' की गजलें

महेश कटारे 'सुगम'

जन्म - 24 जनवरी 1954, पिपरई, ललितपुर (उ.प्र.)
प्रकाशन : प्यास (कहानी संग्रह), गाँव के गेंवड़े (बुंदेली ग़ज़ल संग्रह), हरदम हँसता गाता नीम (बाल-गीत संग्रह), तुम कुछ ऐसा कहो (नवगीत संग्रह), वैदेही विषाद (लम्बी कविता), आवाज़ का चेहरा (ग़ज़ल संग्रह) सहित अनेक कृतियाँ प्रकाशित
संपर्क : काव्या, चंद्रशेखर वार्ड, बीना, जिला सागर (म.प्र.)
मो. 9713024380

(1)

हमारे दौर में इंसानियत नहीं होती
किसी के पास भी ये ख़ासियत नहीं होती

तुम्हारी शक्ल औ सूरत से कुछ नहीं मतलब
हमारी फ़िक्र में रूमानियत नहीं होती

किसी के अश्क बहें और हम पिघल जायें
हमारे पास में वो ज़हनियत नहीं होती

हमारे पास में जो कुछ है सब दिखावा है
नक्ल औ झूठ में कुछ असलियत नहीं होती

रेखांकन : प्रियेश मालवीय

तमाम ग़म तो यतीमों की तरह आते हैं
कि जिनकी अपनी कोई बल्दियत नहीं होती

(2)

राज़ खुलने का इंतज़ार करें
तब तलक साज़िशों से प्यार करें

आबो दानों की पेशकश छोड़ें
सब परिंदों को होशयार करें

हौसलों पर सवार हो जायें
और दुश्वारियों को पार करें
बे यकीनी है संक्रमण जैसी
गैर पर भी तो एतवार करें

चाहतें चैन की विरोधी हैं
कम से कम ज़ीस्त में शुमार करें

(3)

कहीं एकांत के क्षण चाहता है
स्वयं को करना अर्पण चाहता है

मुहब्बत की उठें चिंगारियाँ सी
निगाहों का वो घर्षण चाहता है

वो रहना चाहता आज़ादियों में
मगर मेरा समर्पण चाहता है

दिखा दे दाग चेहरे के हमारे
मेरा दिल साफ़ दर्पण चाहता है

नहीं अरमान कुछ रह जाये बाकी
सुगम जीवन में तर्पण चाहता है

(4)

मैं माचिस की तीली जैसी
लेकिन नम कुछ, गीली जैसी

बेशक मेरी आई जवानी
पर है ढीली ढीली जैसी
सुंदर गोल कचंटीं हूँ मैं
लाल, हरी, और नीली जैसी

भावों की मनमोहक लीची
मीठी और रसीली जैसी

स्वाद भरी है कभी ज़िन्दगी
लगती कभी पनीली जैसी

देंगे वही जो पाएँगे इस ज़िंदगी से हम

अश्विनी कुमार दुबे

एक ज़मींदार परिवार। सैकड़ों एकड़ ज़मीन। ज़मीनों पर काम करने वाले हज़ारों खेतिहर मज़दूर। मज़दूर खेतों में कठिन परिश्रम करते महीनों। हर मौसम में। क्या गर्मी! क्या बरसात! क्या जाड़ा! जब फ़सल कट कर आती, तब उसमें से बहुत थोड़ा उनके हिस्से में आता, जिसमें बमुश्किल सालभर वे अपने परिवार को पाल पाते। वे किसान मज़दूर जो ज़मींदार के खेतों पर काम करते। कड़ी धूप में पसीना बहाते। भरी बरसात में मेड़ों को काट कर अतिरिक्त पानी बाहर निकालते और जाड़े में फटे लिबासों में जाकर खेतों पर फ़सल की सुरक्षा करते। अकसर उनको मिलती गंदी गालियाँ। थोड़ी-सी ग़लती पर पीठ पर बरसते अनगिनत कोड़े। यह सब देख रहा था एक बालक ।

नामी ज़मींदार फ़ज़ल दीन मोहम्मद। शहर में उनकी भव्य हवेली, जिसमें दर्जनों उनके नौकर-चाकर। घर में सारी सुख-सुविधाएँ और ज़मींदारों की पूरी शानोशौकत। प्राय: तो घर में ही महफ़िलें सजतीं। रात होते ही शराब और शबाब का दौर शुरू हो जाता। शहर की मशहूर नाचने वालियाँ आतीं और रात देर तक नाच-गाने का दौर चलता। अकसर नाचने वालियाँ अपने कारिंदों को बिदा कर वहीं सो जातीं ज़मींदार साहब के साथ उनके कमरे में। वैसे ज़मींदार साहब जब उनके कोठे पर जाकर गाना सुनते और देर हो जाती तो स्वयं वहीं सो जाते। यह सिलसिला लगातार चल रहा था, जिसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं थी। लंबी-चौड़ी ज़मींदारी थी जनाब फ़ज़ल दीन मोहम्मद की। व्यापारियों में उठना-बैठना था। शहर के रईसों में गिनती होती थी उनकी। कई धंधों में हिस्सेदारी। कहीं भी उनका पैसा डूबता न था, क्योंकि लठैतों की एक टोली भी उन्होंने पाल रखी थी। ज़मींदार साहब के एक ही इशारे पर ये लठैत किसी का भी सिर फोड़ डालने में तनिक न हिचकिचाते। ज़रूरत पड़ने पर ये विरोधी की हत्या तक कर देते। इस प्रकार फ़ज़ल दीन मोहम्मद अपने शहर के बेताज बादशाह थे।

बीवियाँ तो सभी घरों में होती हैं, अलग-अलग स्वभाव वाली। अधिकांश बीवियाँ अपने शौहरों के सब तरह के कारनामे बरदाश्त करती हैं, चुपचाप। ज़मींदार खानदान के हैं। घर में बिना श्रम किए बेहिसाब धन आ रहा है, वह धन लुटाया जा रहा है रक़्क़ासाओं पर, तवायफ़ों पर। वेश्यालयों में। शराब में। जुए में। लठैतों पर। और न जाने कैसे-कैसे दोस्त-यारों के साथ। बीवियाँ इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं। उन्हें देखना है और चुपचाप सहना है बस।

मगर सभी बीवियाँ ऐसी नहीं होतीं। कुछ प्रतिवाद भी करती हैं, यह जानते हुए कि इससे हमारा ही नुकसान होना है। वे समझाती हैं, अपने पति को। परंतु ज़मींदार पति भला कहाँ मानने वाले। उनके लिए तो औरत पाँव की जूती है। घर की एक बाँदी मामूली सी। ज़्यादा ही विरोध किया बीवी ने तो जो कोड़े मज़दूरों पर आए दिन बरसते रहते, वे घर की बीवी पर भी बरसने लगे। कुटो-पिटो और रोओ अपने कमरे में। कोई नहीं सुनने वाला वहाँ। फिर तुम्हारी ज़रूरत ही क्या? बीवियों की कोई कमी नहीं है ज़मींदार साहब के लिए।

इधर जनाब फ़ज़ल दीन मोहम्मद की पहली ब्याहता सरदारी बेगम का विरोध बढ़ता गया, उधर वे नित नए ब्याह रचाते चले गए, परंतु ज़मींदार साहब को वारिस तो मिला पहली बेगम से ८ मार्च, १९२१ में। वह लड़का भी कमबख्त पूरी तरह माँ पर गया। वह थोड़ा बड़ा होकर पिता को देखता मज़दूरों को सताते हुए। उन्हें बहुत कम वेतन देते हुए। विरोध करने पर उन्हें कोड़ों से पीटते हुए। लठैतों से किसी को भी पिटवाते हुए। लोगों की सरेआम हत्या करते हुए। लड़के का बाल मन तिलमिला उठता। मुट्ठियाँ भिंच जातीं उसकी। आँखों में ख़ून उतर आता उसके। घर में सजती हुई रात में नाच गाने

की महफ़िलें भी देखी उसने। कहकहे, ठहाके और भद्दे मज़ाकों के बीच पिता को झूमते देखा करता वह। वहीं रात में न जाने किस औरत को साथ लेकर वे अपने कमरे में चले जाते। माँ सरदारी बेगम सिसकती रहती। रोती अपने नसीब पर, तब उसका बेटा साहिर उसके आँसू पोंछता। उन्हें ढाढस बँधाता और इस दुनिया से बाहर निकलने के लिए माँ को प्रेरित करता।

...और एक दिन सरदारी बेगम ने अपने बेटे के साथ ज़मींदार फ़ज़ल दीन मोहम्मद का घर छोड़ दिया हमेशा के लिए। वे अपने भाई के घर रहने के लिए आ गईं। सरदारी बेगम के लिए यह निर्णय बहुत कठिन था। अपने शौहर को छोड़कर, हवेली की तमाम सुख-सुविधाओं को लात मारकर अभावों भरी ज़िंदगी का चुनाव कोई अत्यंत साहसी औरत ही कर सकती है। सारे नाते-रिश्तेदार जब सरदारी बेगम को लानत-मलामत भेज रहे थे। उसके इस अप्रत्याशित निर्णय की जब सब ओर से भर्त्सना हो रही थी, तब भी वह औरत टूटी नहीं, जानते हैं किस विश्वास पर, किस बल पर सिर्फ़ अपने बेटे के भरोसे पर। उसे अपने बेटे पर ख़ुदा से ज़्यादा भरोसा था और बेटे को अपनी माँ पर उसी तरह।

मामा के घर साहिर का बचपन बीता। मामा साहिर के पिता की तरह दौलतमंद न थे फिर उनका भी अपना परिवार। उनके बाल-बच्चे। एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में रहते हुए साहिर बड़े होने लगे। करोड़ों की दौलत छोड़कर आई थीं सरदारी बेगम अपने भाई के यहाँ रहने। यहाँ नौकर-चाकर न थे। सुख-साधनों का अभाव और रोज़मर्रे के ख़र्चे लगातार। तब सरदारी बेगम को अपने बेटे को पालने के लिए कमरतोड़ मेहनत करनी पड़ी। उधर उनके पूर्व शौहर फ़ज़ल दीन मोहम्मद की क्रूरता और बदसलूकियाँ बिलकुल कम न हुईं। वे सरदारी बेगम और बेटे साहिर को परेशान करने का कोई अवसर हाथ से न जाने देते। साहिर उनकी बेशुमार दौलत के एकमात्र वारिस थे इसलिए पहला प्रयास तो उनका ये रहा कि किसी भी प्रकार साहिर माँ का साथ छोड़कर यहाँ अपने अब्बू के साथ हवेली में आकर रहने लगे। इसके लिए उन्होंने किशोर साहिर को धन-दौलत का भरपूर लालच दिया। ख़ुशियों के सब्ज़बाग दिखाए। विदेशों में उच्च शिक्षा दिलाने का प्रलोभन दिया। ख़ुद उन्होंने साहिर को बहुत समझाया। जब वे न माने तब नाते-रिश्तेदारों को उनके पास समझाने भेजा। परंतु साहिर किसी भी शर्त पर माँ का साथ छोड़ने के लिए तैयार न हुए। अंततः हारकर जनाब फ़ज़ल दीन मोहम्मद ने सरदारी बेगम पर बेवफाई के सैकड़ों आरोप लगाकर तलाक़ का मुकदमा दायर किया। अपने पक्ष में ज़रूरत भर गवाह उपस्थित कर सकना ज़मींदार फ़ज़ल दीन मोहम्मद के लिए कोई मुश्किल काम न था। अच्छे से अच्छे वकील उनकी सेवाओं के लिए उपस्थित थे। वे सरदारी बेगम से तलाक लेने के साथ उन्हें झूठे आरोपों में फँसाकर कड़ी से कड़ी सज़ा दिलाना चाहते थे। धनबल के पूरे दबाव के साथ सरदारी बेगम के ख़िलाफ़ मुकदमा दायर हुआ। सरदारी बेगम के पास क्या था! वे तो छोटे-मोटे घरेलू काम करते हुए किसी प्रकार अपने बेटे साहिर को पढ़ा रही थीं। साहिर के मामा एक साधारण मध्यमवर्गीय व्यक्ति, जो अपनी और अपनी बहन की ज़िम्मेदारियों का किसी प्रकार वहन कर रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि फ़ज़ल दीन मोहम्मद की तरफ़ से कोई मामला-मुकदमा चले और उसमें उनके छोटे से संसार की ख़ुशियाँ पिसती चली जाएँ। उन्होंने बहनोई दीन मोहम्मद साहब से कई बार मुलाकात की। उन्हें मुकदमा न करने के लिए समझाया। उनके सामने रोए-गिड़गिड़ाए भी। परंतु धन का गुरूर बहुत ख़राब होता है। दीन मोहम्मद ने उनकी एक न सुनी और बड़ी बेरुखी से सरदारी बेगम और उनके बेटे को बर्बाद कर देने का अपना संककल्प दोहराया। अंततः मुक़दमा दायर हुआ और पेशियाँ शुरू हुईं। दीन मोहम्मद पूरी तरह आश्वस्त थे कि मुक़दमा वे ही जीतेंगे और सरेराह सरदारी बेगम की रुसवाई होगी। दीन मोहम्मद के द्वारा उपकृत गवाह पेशियों में आते और सरदारी बेगम के ख़िलाफ़ अनर्गल बातें कहकर चले जाते। सरदारी बेगम बेबुनियाद आरोप सुनते हुए आहत होतीं। साहिर चुपचाप सब सुनते और गहरे सोच में डूब जाते। जब दीन मोहम्मद के सारे गवाहों ने सरदारी बेगम के ख़िलाफ़ जितना ऊल जलूल बोलना था, बोल दिया; तब सरदारी बेगम से अपने पक्ष में गवाह प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। वे कहाँ से लातीं अपने पक्ष में गवाह? हवेली का कोई आदमी उनके पक्ष में एक शब्द बोलने को तैयार न था। तब साहिर ने माँ के पक्ष में गवाही देने के लिए अपना नाम दर्ज कराया। नियत तारीख़ में उनकी गवाही शुरू हुई। बचपन से लेकर हवेली छोड़ने तक के सारे क़िस्से साहिर ने विस्तारपूर्वक अदालत में कह सुनाए। पिता द्वारा बार-बार बिना किसी बात पर माँ को मारना-पीटना। सबके सामने उन्हें अपमानित करना। उनकी छोटी-छोटी ज़रूरतों को नज़रअंदाज़ करना। पिता की ऐय्याशियाँ। शराबखोरी में बहाई जाती बुज़ुर्गों की दौलत और कामगारों-मज़दूरों के साथ जानवरों जैसा सुलूक। सबका विस्तार पूर्वक, सिलसिलेवार विवरण साहिर ने अदालत में कह सुनाया। विद्वान् न्यायाधीश को समझते देर न लगी कि माँ और बेटे के साथ अत्याचार किया जा रहा है। जनाब फ़ज़ल दीन मोहम्मद मुक़दमा बुरी तरह हार गए। सरदारी बेगम को उनसे तलाक़

मिल गया और सारे आरोपों से उन्हें बाइज़्ज़त बरी कर दिया गया।

अदालत में साहिर की तक़रीर सुनकर दीन मोहम्मद को बहुत आघात लगा। उन्हें सपने में भी भरोसा नहीं था कि उनका अपना बेटा, इस बेशुमार दौलत का एकमात्र वारिस उनके ख़िलाफ़ इस तरह बोलेगा। उन्हें अब एक शंका ज़बरदस्त रूप से सताने लगी कि एक न एक दिन साहिर उनकी दौलत में से अपना हक़ पाने के लिए अदालत में ज़रूर उन्हें चुनौती देगा। इस समस्या से निपटने के लिए दीन मोहम्मद ने कई तरह के पैंतरे अपनाए। अपने लठैतों के माध्यम से उन्होंने साहिर को बहुत डराया-धमकाया। यहाँ तक कि एक पिता ने अपने इकलौते बेटे को जान से मारने तक की योजना बना डाली। कुछ तो दीन मोहम्मद के मन में साहिर की अपनी माँ के पक्ष में गवाही देने के कारण ज़हर था ही। उस ज़हर को उन लोगों ने और बढ़ाया जो साहिर के न होने पर ज़मींदार साहब की दौलत आसानी से हड़प सकते थे। दौलत के दुश्चक्र से दीन मोहम्मद अपने आप को नहीं बचा पाए। उन्होंने साहिर को मरवाने के लिए उन पर कई बार हमले करवाए। ऐसे कठिन समय में उनकी माँ सरदारी बेगम ने सीप बनकर उसमें साहिर जैसे मोती को छिपाकर उसकी रक्षा की।

संपूर्ण स्त्री जाति का सम्मान और उससे मोहब्बत, यह साहिर की ज़िंदगी का पहला पाठ था, जो उन्होंने अपनी माँ से सीखा। अब तक वे लुधियाना के खालसा स्कूल में भरती हो अपनी तालीम आगे बढ़ा रहे थे। स्कूल, कॉलेज तो एक बहाना होते हैं। ज़िंदगी स्वयं एक महाविद्यालय है, जिसमें खुली आँखें और खुले दिल-दिमाग़ से जीते हुए आदमी जाने क्या-क्या सीख जाता है, जो कहीं नहीं पढ़ाया जाता। साहिर ने अपने पिता के यहाँ रहते हुए ज़मींदारी प्रथा बहुत नज़दीक से देखी थी। गाँव भर के सैकड़ों मज़दूर स्त्री-पुरुष एक आदमी के लिए खेतों पर लगातार काम कर रहे हैं। गाँवों में बहुत बड़ा भूभाग अकेले एक आदमी का है और वह आदमी ख़ुद कुछ नहीं करता, लोगों से अपने खेतों पर काम करवाता है, ज़बरदस्ती। बदले में जीने भर के लिए थोड़ा-सा उत्पादन कामगारों को दिया जाता, वह भी दया स्वरूप, अधिकार के रूप में बिलकुल नहीं। कुछ ज़्यादा माँग लेने पर मिलते कोड़े और गंदी गालियाँ। हवेली में काम करने वाले दर्जनों नौकर जो मालिक के लिए कुछ भी कर गुज़रने के लिए पूरी तरह तत्पर। उन्हें भी उतना ही मिल पाता, जिसमें वे किसी तरह ज़िंदा रहते हुए मालिक की सेवा कर सकें । एक अकेला आदमी जानवरों की तरह हाँकता रहता गाँव के हज़ारों लोगों को। वे हज़ार-हज़ार लोग आपस में कितने बँटे हुए। छोटी-छोटी जातियों का मकड़जाल। कोई बड़ी जाति वाला। अति विशिष्ट। वह कैसे छोटी जाति वाले के साथ चलेगा। कैसे उसके साथ बैठकर खाएगा। छूत लग जाएगी उसे। धर्मों की दलदल। कोई हिंदू तो कोई मुसलमान। दोनों अपने आप में महान। कोई किसी से कम नहीं। एक-दूसरे को नीचा दिखाते रहने की कोशिशों में संलग्न। सबके दुख-दर्द एक जैसे। न धर्म उनका दुख बाँटता है। न जाति उनका कष्ट दूर करती है। सबको खेतों में एक जैसा काम करना है और ज़मींदार की लानत-मलामत झेलनी है। फिर भी वे एक होकर अपना हक माँगने की हिम्मत नहीं जुटा पाते ? यह प्रश्न साहिर के मस्तिष्क को मथता रहता। जब उन्होंने शहरी जनजीवन देखा तो वहाँ भी वही हाल। कोई एक मिल मालिक और उनकी फैक्टरी में हज़ारों मज़दूर। रात-दिन अपना ख़ून-पसीना बहाकर वे हज़ारों कामगार फैक्टरी का उत्पादन बढ़ा रहे हैं। फैक्टरी के मालिक की तिजोरियाँ दिन दूनी, रात चौगुनी गति से भरती जा रही हैं और मज़दूरों के झोंपड़ों में बस जीवन जी लेने भर की मामूली सुविधाएँ। क्यों नहीं सारे लोग एक होकर इस अन्याय के ख़िलाफ़ खड़े हो जाते ?

समाज में व्याप्त अनगिनत कुरीतियाँ। घनघोर जातिवाद। भयंकर धर्मांधता और स्त्री उत्पीड़न के सैकड़ों दृश्य साहिर ने बहुत नज़दीक से देखे, तब उनका दिल दहल उठा। द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो चुका था। ब्रिटेन की इसमें सक्रिय भागीदारी थी और भारत में उनके पाँव उखड़ने प्रारंभ हो चुके थे। युद्ध के दौरान भारत में ज़रूरी चीज़ों की क़ीमतें तेज़ी से बढ़ने लगीं। सामान्यजन में गरीबी तो पहले से ही व्याप्त थी ऊपर से उपयोगी वस्तुओं की कमी और बढ़ती हुई महँगाई ने भारतीयज़नो का जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया। जनता में असंतोष बढ़ता जा रहा था। साहिर इन दिनों स्कूल की पढ़ाई पूरी करके गवर्नमेंट कॉलेज में आगे की पढ़ाई में लगे हुए थे। वे स्टूडेंट फेडरेशन में एक बार प्रेसीडेंट और दूसरी बार सेक्रटरी के रूप में चयनित हुए। यहीं उन्होंने मार्क्सवाद को पढ़ा और उससे प्रभावित हुए। उनके विषय थे— उर्दू, पर्शियन और फ़िलासफ़ी। देश और देशवासियों की हालत देखते हुए यहीं से उनके मन में शायरी फूटने लगी। उस समय उनके दग्ध हृदय ने गाया— 'क़सम उन तंग गलियों की जहाँ मज़दूर रहते हैं... ।'

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हो चुका था। देश का हर नौजवान देश की आज़ादी के लिए मर मिटने के लिए तैयार था। राष्ट्रीय कांग्रेस के आह्वान पर हर व्यक्ति आज़ादी की लड़ाई में शरीक हो रहा था। उन्हीं दिनों आज़ादी के लिए दीवानों की रैलियों में शामिल होकर साहिर ने लाठियाँ भी खाईं। विदेशी हुकूमत के कारण हर क़दम पर भारतीयों की उपेक्षा और उनका शोषण हो रहा था। बड़ी

सरकारी नौकरियों में अंग्रेज़ों के लिए आरक्षण था। भारतीय अपनी कुशलता और योग्यता के बावजूद छोटे पदों पर बने रहने के लिए अभिशप्त थे। अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ भारतीयों में ज़बदरस्त असंतोष की लहर व्याप्त थी। जगह-जगह हड़तालें, आंदोलन, रैलियाँ, प्रदर्शन और अंग्रेज़ी शासन के ख़िलाफ़ असहयोग की भावना अपने पूरे उफान पर थी। ऐसे समय में भी देश के राजे-महाराजे, ज़मींदार और पूँजीपति अंग्रेज़ों के पिट्ठू बनकर उनका खुलेआम साथ दे रहे थे। साहिर का मन यह सब देखते हुए अत्यंत विचलित हो उठता था।

उसी समय 1943 में बंगाल के भीषण अकाल ने पूरे देश को बुरी तरह हिलाकर रख दिया। चंद महीनों में ही वहाँ भूख से लगभग तीस लाख लोगों की मौत हो गई। साहिर के हृदय पर इस घटना का ज़बरदस्त असर पड़ा। देश के दूसरे हिस्सों में जब अनाज के भंडार भरे पड़े हों, तब देश के एक हिस्से में इतने सारे लोग भूख से मर जाएँ, इससे बड़ी अमानवीय घटना भला क्या हो सकती है? सरकार यदि चाहती तो समय रहते उचित प्रबंध करके इतने सारे लोगों की जान बचाई जा सकती थी। आदमी के जीवन में भूख कितनी बड़ी चीज़ है और इसको मिटाने के लिए यदि व्यवस्था उदासीन हो तो कितनी बड़ी तबाही सामने आ सकती है, यह बंगाल के अकाल से स्पष्ट था। अकाल के समाचार अख़बारों में छप रहे थे। अंग्रेज़ शासन अपनी तरफ़ से तबाही की रिपोर्ट और आँकड़ों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत कर रहे थे। अंग्रेज़ शासन के ख़िलाफ़ जनता में ग़ुस्सा फूट पड़ रहा था। अंग्रेज़ों ने इस विद्रोह को दबाने के लिए हरसंभव प्रयास किए। विद्रोही नेताओं को जेल में डाल दिया गया। जुलूसों में लाठीचार्ज। लोगों की गिरफ़्तारियाँ। फ़र्ज़ी मुकदमे। क्रांतिकारियों को फांसी। इस प्रकार अंग्रेज़ों का शासन क्रूरता की हदें पार कर चुका था। तब महात्मा गांधी जी ने संपूर्ण असहयोग की घोषणा की और विद्यार्थियों, कर्मचारियों, मज़दूरों एवं किसानों को सड़क पर उतर आने का आह्वान किया। भारतीयजन अंग्रेज़ शासन की नौकरियाँ छोड़ रहे थे। विद्यार्थी अपने कॉलेज छोडकर आज़ादी के आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। किसान एक ओर ज़मींदारों के अत्याचारों के ख़िलाफ़ लड़ रहे थे दूसरी ओर अंग्रेज़ों के शासन से मुक्ति के लिए भी वे संघर्षरत थे। इसी प्रकार शहरी मज़दूर भी मिल मालिकों और अंग्रेज़ी शासन से मुक्ति की दोहरी लड़ाई लड़ रहे थे। ऐसे कशमकश भरे दौर में साहिर ने भी अपने कॉलेज की पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी। वे अब पूरी तरह शायरी के लिए समर्पित हो चुके थे। इस पूरे स्वतंत्रता आंदोलन का उनके व्यक्तित्व पर बहुत गहरा असर हुआ। अब वे लगातार मुशायरों में जा रहे थे और हर तरह की ग़ुलामी के ख़िलाफ़ वे जनता की आवाज़ अपने अशआरों में बुलंद कर रहे थे। अन्याय, शोषण, ग़रीबी, संघर्ष और आज़ादी की बातें साधारणजन की भाषा में गाते हुए वे जनजागरण के लिए कटिबद्ध थे। नारी उत्पीड़न के भयानक दृश्य तो उन्होंने बचपन से देखे थे इसलिए हर स्त्री में उन्हें एक जुझारू महिला दिखाई देती थी। परिवार और समाज स्त्री के सहयोग के बिना कभी नहीं चल सकता। एक ओर स्त्री पुरुष के लिए प्रेम और प्रेरणा की प्रतीक है। दूसरी ओर वह अन्याय के ख़िलाफ़ प्रचंड शक्ति की प्रतीक है। दोनों ही स्थितियों में वह सम्माननीय है और यह सम्मानजनक दर्जा उसे हर हालत में मिलना चाहिए।

हर व्यक्ति के जीवन में किसी स्त्री के प्रेम का बड़ा महत्त्व होता है। प्रेम जीवन की अत्यंतिक ज़रूरत भी है, परंतु सबको यह सहज उपलब्ध हो, ऐसा संभव नहीं हो पाता। साहिर के जीवन में भी ऐसा हुआ। छात्र जीवन में महिन्दर प्रेम चौधरी नामक लड़की से उन्हें प्रेम हुआ। लड़की को भी साहिर पसंद थे। परिस्थितियाँ साथ देतीं तो दोनों एक सफल दांपत्य जीवन बिताते। प्रेम और शृंगार की न जाने कितनी नकमें साहिर ने 'प्रेम' को समर्पित कीं। साहिर कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर बेरोज़गार थे। मुशायरों से जो थोड़ा-बहुत पारिश्रमिक मिल जाता उससे वे अपना और अपनी माँ का भरण-पोषण कर रहे थे। हालाँकि वे अपने अब्बू की बेशुमार दौलत के इकलौते वारिस थे। अनीति और अत्याचार से जोड़ी गई उस दौलत की तरफ़ साहिर ने मुड़कर कभी नहीं देखा। वे कई बार कह चुके थे कि उन्हें अपने पिता की दौलत में से एक फूटी कौड़ी भी नहीं चाहिए। परंतु पिता को उनकी बातों पर कभी भरोसा नहीं हुआ, उन्हें जीवनभर यह डर बना रहा कि एक न एक दिन साहिर अदालत का दरवाज़ा खटखटाकर उनसे उनकी दौलत छीन लेंगे। उनके पिता की जायदाद पर जिन रिश्तेदारों की बुरी निगाह थी, वे भी दीन मोहम्मद को साहिर के ख़िलाफ़ भड़काते रहते थे। इस प्रकार बाप-बेटे में जीवनभर दुश्मनी बनी रही। दीन मोहम्मद ने उन्हें रास्ते से हटाने के हरसंभव प्रयास किए, परंतु उन्हें सफलता न मिल सकी। उधर साहिर पिता के जीवित रहते हमेशा असुरक्षा महसूस करते रहे। वे अकेले कहीं न जाते थे। उनके साथ कोई न कोई ज़रूर होता था। साहिर को डर रहता कि उनके पिता कभी भी उन पर जानलेवा हमला करा सकते हैं। महिन्दर प्रेम चौधरी के पिता जो एक खानदानी रईस थे वे साहिर की मुफलिसी और उनके असुरक्षित जीवन से भलीभाँति परिचित थे। वे भला कैसे चाहते कि साहिर और उनकी बेटी का प्यार परवान चढ़े। उन्होंने प्रेम के इस अंकुर को वहीं समाप्त करने की पूरी कोशिश की।

सबसे पहले तो उन्होंने अपनी बेटी को काबू में लिया, फिर साहिर को उनकी औकात बताने में देर नहीं की। यहाँ तक कि कॉलेज के दिनों में उन्हें प्रताड़ित भी करवाया। साहिर दौलत की ताकत भलीभाँति समझते थे। उधर उनकी प्रेमिका ने जब अपने कदम पीछे कर लिए तब साहिर ने भी वह रास्ता सदा के लिए छोड़ दिया। साहिर को लगता रहा कि दौलत के प्रभाव में उनके पहले प्यार की हत्या हुई है, यह एहसास उन्हें बार-बार सालता था। महिन्दर को टी.बी. की बीमारी है, यह बात साहिर को उसकी मौत के बाद मालूम हुई। साहिर को बहुत दुख हुआ। वे बिना किसी की परवाह किए उनकी अंतिम यात्रा में शामिल हुए और महिन्दर को चिता पर जलते हुए देखकर रोते रहे। बहुत दिनों बाद 'ईशर कौर' नामक युवती से उन्हें इश्क़ हुआ जो साहिर की मुफलिसी के कारण असफल हुआ। उन दिनों वे श्रृंगार और वियोग की रचनाएँ लिखते रहे। कालांतर में पंजाबी की सुप्रसिद्ध लेखिका अमृता प्रीतम भी उनकी ओर आकृष्ट हुईं। वे एक प्रतिष्ठित पंजाबी परिवार की लड़की थीं। इधर साहिर जो ख़ुद को सिर्फ़ इंसान मानते आए थे, परंतु उनकी पहचान एक मुसलमान के रूप में थी। धर्मों का अंतर। दौलत का अंतर और झूठी पारिवारिक प्रतिष्ठा का अंतर भला इन दोनों को कैसे मिलने देता। अमृता प्रीतम के पिता ने भी वही किया जो बहुत पहले महिन्दर प्रेम चौधरी के पिता ने साहिर के साथ किया था। इस प्रेम की असफलता को साहिर ने बहुत गहराई से महसूस किया। इंसान इंसान में फ़र्क़ करने वाली यहाँ बहुत दीवारें थीं। इन दीवारों के रहते इंसानियत कभी प्रतिष्ठित नहीं हो सकती इसलिए इन दीवारों को ध्वस्त करने के लिए अपना जीवन होम करना चाहिए, यह सोचकर साहिर अपने पथ पर आगे बढ़ने लगे।

भले ही साहिर ने कॉलेज में उर्दू, पर्शियन और फ़िलासफ़ी की पढ़ाई पूरी नहीं की थी, परंतु स्वाध्याय करते हुए वे इनमें पूरी तरह कुशल हो चुके थे। एक तरक्कीपसंद शायर के रूप में उनकी ख्याति फैलने लगी थी। उर्दू की एक मासिक पत्रिका 'अदबे-लतीफ' में उन्हें संपादक के रूप में नौकरी मिल गई। इसके साथ 'शाहकार' नामक पत्र में भी वे लगातार अपने लेख लिखने लगे। इन दिनों वे लाहौर में रह रहे थे।

आज़ादी की लड़ाई में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के आपसी मतभेद उभरकर सामने आने लगे। अब यह आंदोलन, जिसकी शुरुआत पूरे देश को अंग्रेज़ों के चंगुल से छुड़ाने के उद्देश्य से हुई थी, जिसके लिए न जाने कितने हिंदू-मुसलमानों ने मिलकर संघर्ष किया और एक साथ फाँसी पर लटक गए, जातिगत हितों में बँटता चला जा रहा था। आंदोलन के कुछ शीर्ष नेता अंग्रेज़ों की इस कूटनीति को भलीभाँति समझ रहे थे। वे दोनों समुदाय के लोगों को अपने भाषणों में ख़ूब समझाते। दोनों समुदाय के समान हितों की बातें करते, परंतु उनकी आवाज़ नक़्क़ारखाने में तूती की तरह थी। पूरे भारतवर्ष में सांप्रदायिकता की चिनगारियाँ सुलगती जा रही थीं। साहिर इन सबसे बहुत चिंतित हुए और उन्होंने अपने पत्रों में तीखी तकरीरें लिखना शुरू किया। वे खुलकर सांप्रदायिकता के ख़िलाफ़ लिख रहे थे, परंतु पूरे देश में धर्मांधता की ऐसी बाढ़ आई, जिसे कोई न रोक सका। सन् 1947 में देश अंग्रेज़ी शासन से आज़ाद तो हो गया, परंतु अपनों के ही भयंकर रक्तपात के साथ दो राष्ट्रों के झंडे अलग-अलग फहराए गए।

अब तक साहिर की शायरी का पहला संकलन 'तल्ख़ियाँ' प्रकाशित हो चुका था। उर्दू अदब ने इस उदीयमान शायर को हाथों-हाथ लिया। लोग उनकी शायरी पढ़ रहे थे। उस पर चर्चा कर रहे थे। उनके रिसालों की चर्चा सरकारी हलकों में भी होती थी। धर्म के आधार पर देश का बँटवारा और विस्थापन के समय लाखों लोगों का कत्लेआम उन्हें क़तई बर्दाश्त नहीं हुआ। जब समाज के नवनिर्माण की बात होनी चाहिए थी, नई आर्थिक नीतियों पर विमर्श होना चाहिए था, धार्मिक अंधविश्वासों के ख़िलाफ़ मुहिम चलाई जानी चाहिए थी, सामाजिक समरसता के प्रयास किए जाने चाहिए थे, ग़रीबी के ख़िलाफ़ शंखनाद किया जाना चाहिए था। तब देश के शीर्ष नेता देश का बँटवारा स्वीकार कर धर्म के आधार पर लोगों को इधर से उधर, उधर से इधर आने-जाने की समस्या से जूझ रहे थे और यह समस्या उन्होंने ही पैदा की थी। अंग्रेज़ चले गए और दोनों राष्ट्रों को समस्याओं की दलदल में जान-बूझकर धकेल गए। साहिर ने तात्कालिक समस्याओं पर गंभीरता से विचार किया और अपने पत्र 'सबेरा' में इनका विवेचन करते हुए विचारोत्तेजक संपादकीय लिखा। पाकिस्तान सरकार को साहिर का मानवतावादी रवैया बिलकुल पसंद न था। वे पहले से ही अपनी शायरी के कारण पाकिस्तानी सरकार की नापसंदगी में थे। 'सबेरा' के इस संपादकीय ने आग में घी का काम किया। पाकिस्तानी सरकार ने नाराज़ होकर उनकी गिरफ़्तारी का वारंट ज़ारी कर दिया। अब साहिर के लिए यह स्पष्ट हो गया था कि वे आगे किसी भी तरह पाकिस्तान में नहीं रह सकते। वे अपने विचार, अपना स्वभाव और लेखन की दिशा बदल नहीं सकते थे अत: तुरंत बाद सन् १९४८ में पाकिस्तान छोड़कर वे दिल्ली आ गए। रोज़ी-रोटी की समस्या यहाँ भी थी। साहिर को सिवा लिखने-पढ़ने के कुछ न आता था। उनके पास विश्वविद्यालय की कोई डिग्री न थी, जिसके बल पर वे कहीं नौकरी तलाशते। बाप

की करोड़ों की दौलत वे बहुत पहले ही छोड़ चुके थे। हालाँकि उनके ज़मींदार बाप अभी भी उस दौलत के इकलौते वारिस से बहुत ख़फ़ा थे और इस संदेह से भरे रहते थे कि साहिर कभी भी लौटकर संपत्ति को बँटवा सकते हैं। इसलिए वे चाहते कि किसी तरह भी साहिर को हमेशा के लिए रास्ते से हटा दिया जाए।

सचमुच लिखने-पढ़ने वालों की एक भरी-पूरी दुनिया होती है। उनके अशआरों का पहला संकलन 'तल्ख़ियाँ' यहाँ ख़ूब पढ़ा गया था। उनको चाहने वाले न जाने कितने लोग, जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा, वे उनकी शायरी से उन्हें भलीभाँति जानते थे। विस्थापन की तमाम परेशानियों के बीच उनके प्रशंसकों ने उनका साथ दिया। यहाँ वे 'प्रीतलड़ी' और 'शाहराह' नामक पत्रों का संपादन करने लगे। उनकी क़लम में जोश था। रवानी थी। और नए सोच को नए अंदाज़ में कहने का जज़्बा था। 'प्रीतलड़ी' और 'शाहराह' में वे लगातार लिख रहे थे। मुशायरों में शरीक होने के भी उन्हें अवसर मिलने लगे। भले ही उन्होंने कॉलेज से कोई डिग्री नहीं ली और उन्हें अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ी परंतु पढ़ने की आदत उनकी गई नहीं थी। भारत में आकर उन्होंने हिंदी पर ज़ोर दिया। वे यह बात अच्छी तरह जानते थे कि इस देश में हिंदी ही जन-जन की भाषा है। हालाँकि पूरे देश में भाषा को लेकर तरह-तरह के झगड़े थे। सरकारी कामकाज से अंग्रेज़ी को अपदस्थ करना कठिन था, परंतु उसके ख़िलाफ़ स्वर उठने लगे थे। दक्षिण भारत में हिंदी का स्वागत खुलकर नहीं हो रहा था। उर्दू पढ़ने और जानने वाले उसके संरक्षण और विकास को लेकर बेचैन दिखाई देते थे। हिंदी ऐसे समय में आतिथेय भाषा के रूप में उभरकर सामने आई। उसने किसी भाषा से कोई परहेज नहीं किया। बोलियों से लेकर समवृद्ध भाषाओं तक के उपयोगी शब्दों को उसने उदारतापूर्वक अंगीकार किया। हिंदी की इस विशेषता से साहिर प्रभावित थे इसलिए हिंदी ग्रंथों का उन्होंने गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया, जो बाद में उनकी शायरी और फ़िल्मी गीतों में स्पष्ट दिखाई देता है। उन्हीं दिनों उनके शायर मित्र मजाज़ ने उनसे बंबई चलने का आग्रह किया। उन्हें प्रस्ताव पसंद आया। इस प्रकार वे मजाज़ के साथ धन और कला की महानगरी बंबई में अपने लिए जगह तलाशने चले आए।

देश अभी नया-नया आज़ाद ही हुआ था। सांप्रदायिकता की आग अभी पूरी तरह बुझी न थी। भारत माता के प्रति प्रेम और आदर की भावनाएँ विकसित करने की ज़रूरत थी। यह भारत के नवनिर्माण का शुरुआती समय था। हमें अपने बल पर दुनिया के सामने खड़ा होना था, जबकि विदेशी सामानों से बाज़ार पटा पड़ा था। हमें छोटी-छोटी चीज़ें भी विदेशों से मँगानी पड़ रही थीं। साहिर गांधी के चरखा आंदोलन से परिचित थे, किस प्रकार एक साधारण चरखे के बल पर हमने इंग्लैंड में मैनचेस्टर की मिलें बंद करवा दी थीं। इस प्रकार आज़ादी के बाद अब हिंदुस्तान जाग रहा था। साहिर अपने आसपास हो रहे परिवर्तनों को देख रहे थे। समझ रहे थे। बंबई में रहते हुए उन्हें जैसे ही फ़िल्मों में गीत लिखने के अवसर मिले। उन्होंने 'भारत जननी तेरी जय हो...' से अपनी फ़िल्मी गीत लेखन की यात्रा प्रारंभ की। 'आज़ादी की राह' नामक फ़िल्म में सन् १९४८ में उन्हें सबसे पहले गीत लिखने का मौक़ा मिला। इस फ़िल्म में उन्होंने भारत जननी... के साथ तीन महत्त्वपूर्ण गीत और लिखे। ठीक है कि फ़िल्मों में पटकथा की पृष्ठभूमि के अनुसार ही गीत लिखने पड़ते हैं। यहाँ वैसी स्वतंत्रता नहीं, जैसी ग़ैर फ़िल्मी लेखकों-कवियों को होती है। इसके लिए साहिर ने एक सुगम रास्ता निकाला। वे स्वतंत्र रूप से शायरी कर रहे थे। कविताएँ और नज़्में लिख रहे थे। मुशायरों और कवि-सम्मेलनों में अपनी रचनाएँ पढ़ रहे थे। इससे हिंदी-उर्दू साहित्य जगत् में फ़िल्मों में आने के पूर्व ही उनकी अच्छी ख़ासी पहचान स्थापित हो चुकी थी। उनके शायर और कवि मित्र, फ़िल्मों में लेखन की सीमाएँ और बंदिशों के प्रति उन्हें आगाह भी कर रहे थे। साहिर स्थितियों को भलीभाँति जान रहे थे। समझ रहे थे। परंतु अब तो उन्हें यहीं रहना था, फ़िल्मों में। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि जिन आम लोगों के लिए वे लिख रहे हैं, जिन्हें वे संबोधित कर रहे हैं, उनसे सीधे जुड़ने का सबसे शक्तिशाली माध्यम फ़िल्में हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगी हुई सैकड़ों संस्थाएँ मिलकर सुदूर अंचलों में हिंदी के लिए उतना कारोबार न कर पा रही थीं, जितना हिंदी के लिए हिंदी फ़िल्मों से हो रहा था। इतने शक्तिशाली माध्यम का उपयोग वे अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए करना चाहते थे और उन्होंने वैसा ही किया। कोई भी निर्माता-निर्देशक, जब अपनी कहानी लेकर उनसे किसी सिचुएशन पर गीत लिखने का आग्रह करता, तब सबसे पहले वे अपनी डायरी उसको पकड़ाकर कहते— अपनी सिचुएशन के लिए इसमें से कोई नज़्म या गीत चुन लीजिए। अधिकांशत: तो बात बन जाती कई निर्माता अपनी पसंद की नज़्म उनकी डायरी से लेकर संतुष्ट हो जाते। जब उस सिचुएशन पर पुरानी नज़्मों में से कोई पसंद की नज़्म न मिलती, तब वे नए सिरे से लिखने बैठ जाते। वे कैसी भी सिचुएशन के लिए गीत लिख रहे हों, पर उन्होंने अपने विश्वासों, मूल्यों और समयगत सच्चाइयों को ही अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान की।

'आज़ादी की राह' नामक अपनी पहली फ़िल्म में उन्हें जब

चार गीत लिखने का अवसर मिला तब उन्होंने जननी को याद करने का कार्य किया। सबसे पहले वे जननी को कैसे याद न करते? जननी अर्थात् माँ। बचपन से लेकर अब तक उन्होंने जो सर्वाधिक क़ीमती चीज़ जानी थी, वह माँ का प्यार ही तो था। वे अब भी माँ कि लिए, माँ के साथ ही जी रहे थे। चरखे की स्मृति भी उनके मन में बहुत गहरी थी। एक छोटे से यंत्र ने किस प्रकार घर-घर में उद्यम के महत्त्व को स्थापित कर दिया था। दूसरा गीत उन्होंने लिखा— 'मेरे चरखे में जीवन का राग सखि...।' हिंदुस्तान को अभी बहुत आगे बढ़ना है। नए-नए उद्योग-धंधे स्थापित करने हैं। सामाजिक विषमता को मिटाना है और शिक्षा की रोशनी सब जगह फैलानी है। इसलिए उन्होंने लिखा— 'बदल रही है ज़िंदगी...' एवं 'जाग उठा है हिंदुस्तान...।'

उनके गीत अब घर-घर में गूँजने लगे। ज़िंदगी विविध रंगों से भरी है। उन्हें ज़िंदगी के हर रंग पर अपनी सोच के अनुसार लिखना था। 1948 से फ़िल्मों में गीत लिखने का सिलसिला जो शुरू हुआ सो आख़िरी साँस तक चलता रहा। वे जैसा लिखते थे, जैसा बोलते थे, वैसा ही जीते थे और सबसे बड़ी बात वैसा दिखते थे। उन्होंने अपने गीतों में शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई तो अपनी ज़िंदगी में कभी शोषण बर्दाश्त नहीं किया। आत्मसम्मान के प्रति वे बहुत सजग शायर रहे। उनके पहले फ़िल्मों में गायक को लेखक से ज़्यादा पारिश्रमिक मिलता था। इस प्रकार आकाशवाणी पर बजने वाले गीतों में गायक और संगीतकार के नामों का तो उल्लेख होता था, परंतु लेखक को वहाँ से न रॉयल्टी दी जाती और न ही गीत के साथ उनका नाम लिया जाता था। साहिर ने इस भेदभाव के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद की। लेखकों, शायरों और कवियों को बुलाया। उन्हें समझाया और असहयोग का रास्ता अपनाकर पुरानी व्यवस्था को घुटने टेकने के लिए मजबूर कर दिया। इसकी वजह से कई नामी संगीतकारों और गायकों से उनके संबंध ख़राब हो गए, जिसके कारण उनके आर्थिक हितों पर कुठाराघात हुआ, परंतु उन्होंने किसी की कोई परवाह नहीं की। अंततः निर्माता, निर्देशक और आकाशवाणी वालों को उनकी माँगें स्वीकार करनी पड़ीं। फ़िल्मों के क्षेत्र में लेखकों, शायरों और कवियों को सम्मानजनक पारिश्रमिक मिलने लगा। रिकॉर्ड कपनियों ने रिकॉर्डों और अपने फोल्डरों पर शायर का नाम लिखना शुरू कर दिया। रेडियो पर बजने वाले गीतों में कवि, शायर के नाम का भी उल्लेख होता और आकाशवाणी से नियमित पारिश्रमिक भी दिया जाने लगा। साहिर के नेतृत्व में लेखकों, कवियों और शायरों ने एक बड़ी लड़ाई जीती और अपने आत्मसम्मान को और आगे बढ़ाया। साहिर का अर्थ होता है, जादूगर। सचमुच उनकी क़लम में जादू था, इस जादू को पहचाना सबसे पहले प्रसिद्ध संगीतकार एस.डी. बर्मन ने। बर्मन दादा के साथ साहिर की ख़ूब जमी। एस.डी. बर्मन को जब भी किसी फ़िल्म में बतौर संगीतकार लिया जाता, उनकी पहली पसंद होते साहिर लुधियानवी। कभी-कभी तो बर्मन दादा साहिर के लिए निर्माता—निर्देशक से लड़ तक जाते। बर्मन दादा की आर्केस्ट्रा में काम करने वाले सभी सहयोगीजन साहिर की बहुत इज़्ज़त करते थे। उनके असिस्टेंट एन. दत्ता स्वतंत्र संगीतकार के रूप में स्थापित होने के लिए बहुत संघर्ष कर रहे थे। तमाम कोशिशों के बाद उनकी अपनी पहचान नहीं बन पा रही थी, तब ऐसे कठिन समय में साहिर ने उनकी बहुत मदद की। साहिर ने उनके साथ कम पारिश्रमिक में काम करना स्वीकार किया। उनके साथ साहिर ने बहुत सारी फ़िल्मों में अत्यंत प्रभावशाली गीत लिखे।

संगीतकार रवि भी साहिर के प्रशंसकों में रहे। रवि उनके भाव जगत् को अच्छी तरह जानने लगे थे। कैसी भी सिचुएशन हो रवि उसमें से साहिर के मनोनुकूल शायरी के लिए जगह निकाल ही लेते थे। फिर उसकी उतनी ही प्रभावशाली धुन तैयार कर रवि ने उनकी नज़्मों को यादगार बना दिया। रवि, साहिर और महेंद्र कपूर की तिगड़ी ने फ़िल्म जगत् को एक से एक नायाब गीत दिए।

संगीतकार रोशन भी साहिर को बहुत पसंद करते थे। वे साहिर के साथ घंटों बैठते और एक-एक शब्द पर गंभीर विचार-विमर्श करते। रोशन, साहिर से कहा करते जब तक आपकी शायरी मेरे भीतर न उतर जाए, मैं उसका मर्म अच्छी तरह न जान लूँ, मैं धुन बनाते समय उसके साथ न्याय नहीं कर सकता। साहिर जब उन्हें अपनी शायरी के एक-एक लफ़्ज़ का मतलब विस्तार से बताते तब अकसर रोशन उछल पड़ते और आश्चर्य में कहा करते, इतनी गहरी बात! तब तो इसकी धुन बनाते हुए मुझे भी स्वरों में गहरे तक डुबकी लगानी पड़ेगी। और रोशन ऐसा ही करते। तब रोशन के साथ काम करते हुए उन्हें पहला फ़िल्म फेयर अवॉर्ड 'ताजमहल' फ़िल्म में— 'जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा...' गीत के लिए प्रदान किया गया। सन् 1963 में।

वैसे तो साहिर ने सभी नए-पुराने संगीतकारों के साथ काम किया। अकसर वे कलाम पहले लिखते थे, उस पर धुन बाद में बनाई जाती थी। उनके लिए लिखा हुआ शब्द, बाक़ी चीज़ों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। 'शब्द ब्रह्म' की भारतीय अवधारणा से वे पूरी तरह सहमत थे और इसे इसी तरह जीवनभर वे मानते रहे। शब्द के सम्मान में उन्होंने कभी कोई कमी नहीं आने दी। वे रूढ़ अर्थों में धार्मिक नहीं थे परंतु उनकी शायरी किसी इबादत से कम न थी। मनुष्य की गरिमा, उनके लिए धर्म, जाति, वर्ग, समुदाय यहाँ तक कि राष्ट्र से भी ऊपर रही। तभी तो वे लिख सके— तू हिंदू बनेगा न मुसलमान

बनेगा। इंसान की औलाद है इंसान बनेगा...।'

संगीतकार खय्याम भी साहिर का बहुत आदर करते थे। उनकी प्रसिद्ध नज़्म 'मैं पल दो पल का शायर हूँ...' को खय्याम ने मुकेश की आवाज़ में स्वरबद्ध किया और यह रचना उनके जीवन की कालजयी रचना बन गई।

साहिर लुधियानवी बहुत गंभीर प्रकृति के आदमी थे। अकसर अपने ख़यालों में डूबे रहने वाले। उनकी सबसे बड़ी शुभचिंतक, मित्र और बिलकुल ख़ुदा की तरह रही उनकी माँ। इसीलिए तो माँ के दुनिया छोड़ते ही साहिर ज़्यादा दिनों तक ज़िंदा नहीं रह सके। मात्र तीन साल के अंतराल में वे भी इस जहां से रुख़सत हो गए। साहिर हमेशा साहस और सच्चाई की प्रतिमूर्ति बनकर जिए। बी.आर. चोपड़ा परिवार से उनके बहुत अच्छे संबंध रहे। बी.आर. बैनर के तले उन्होंने जीवनभर काम किया। पूरा परिवार उनकी प्रतिभा का कायल था। मित्रों में सरदार जाफरी, जां निसार अख्तर, अमृता प्रीतम और गायिका सुधा मल्होत्रा के नाम लिए जा सकते हैं।

सबसे बड़ी बात यह भी है कि उन्होंने फ़िल्मों के लिए लिखते हुए, 'तल्ख़ियाँ' प्रकाशित होने पर जो साहित्यिक मुकाम हासिल किया था, उसे बाद में ऊपर और ऊपर उठाया। इसलिए उनका नाम आज भी अदब की दुनिया और फ़िल्मी दुनिया में बड़े आदर से लिया जाता है। 'परछाइयाँ' उनकी बहुत प्रसिद्ध और लंबी नज़्म है, जो अदब की दुनिया में मील का पत्थर है। उनकी न जाने कितनी रचनाएँ पाठ्यक्रम में लग जाने लायक हैं, परंतु दूसरे माध्यमों से लाखों लोग उनसे जुड़ रहे हैं।

साहिर को दो बार सर्वश्रेष्ठ गीतकार का फ़िल्म फेयर अवॉर्ड मिला; एक 1963 में 'जो वादा किया वो निभाना पड़ेगा' (ताजमहल), दूसरा 1976 में 'कभी-कभी मेरे दिल में ख़याल आता है' (कभी-कभी)। समय-समय पर कई सरकारी और गैरसकारी संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित कि या। ८ मार्च, २०१३ को भारत के महामहिम राष्ट्रपति ने उनकी स्मृति में ज़ारी डाक टिकट का विमोचन किया। साहिर के कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए, उन पर शोध कार्यों को प्रोत्साहन देने के लिए और उन पर केंद्रित समय-समय पर सम्मेलन, सेमिनार आदि विभिन्न कार्यों के लिए 'साहिर लुधियानवी जीनियस ग्लोबल रिसर्च कौंसिल' की स्थापना हुई, जो अपने उद्देश्य में अग्रसर है।

ऐसा अजीज शायर साहिर लुधियानवी मात्र अट्ठावन वर्ष की उम्र में दिल का दौरा पड़ने से हमेशा के लिए हमसे बहुत दूर चला गया। आख़िर वह कहता भी तो यही था— 'मैं पल दो पल का शायर हूँ, पल दो पल मेरी कहानी है...।'

शेष अगले अंक में.....

संपर्क: 326 बी/आ महालक्ष्मी नगर इंदौर 452010 मो. 9425167003

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क की सूचना

प्रिय पाठकों,

सदस्यों से अनुरोध है कि अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन (15 वर्ष के लिए)	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

पुस्तक समीक्षा

महाभारत का सच

– सूर्यकांत नागर

पुस्तक विवरण–

कहानी संग्रह	:	महाभारत रिसता है
लेखक	:	डॉ. सत्यभामा
संस्करण	:	प्रथम
मूल्य	:	₹300
प्रकाशक	:	प्रभात प्रकशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली

'महाभारत रिसता है' साहित्यकार डॉ. सत्यभामा की महाभारत की उपकथाओं पर आधारित पच्चीस कहानियों का संग्रह है। महाभारत की कथाएँ इतनी प्रेरक और कालजयी हैं कि कई चिंतकों और लेखकों ने उन्हें अपने–अपने ढंग से विश्लेषित किया है। महाभारत के रचयिता ने मानव जीवन को विभिन्न स्तरों पर रचा है। इसमें हमें व्यक्ति का विद्रोही चेहरा ही नहीं, मानवीय चेहरा भी दिखाई देता है, इन्हीं से प्रेरित हो विद्वानों ने कई कहानियाँ, कविताएँ और उपन्यासों का सृजन किया है। आज भी महाभारत के पात्र, किसी न किसी रूप में समाज में मौजूद है। इन्हीं से प्रेरित हो महाभारत के पात्रों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर वर्तमान समाज की संगत विसंगत स्थितियों को डॉ. सत्यभामा ने प्रस्तुत किया है। वेद व्यास का रचना–संसार इतना विराट है कि मनुष्य जीवन का कोई कोना उनसे नहीं छूटा।

कृति का नाम 'महाभारत रिसता है' अर्थबोधक है। रिसने का अर्थ है धीमे–धीमे टपकना, जैसे नल और छत से पानी थोडी थोड़ी मात्रा में रिसता हो, धीरे–धीरे प्रवाहित होता है। महाभारत के पात्र आज भी जीवित है अपनी पूर्णता या अपूर्णता में–अवशेष की तरह, वेग उतना न हो, पर उनके होने के संकेत स्पष्ट हैं। रिसती हुई स्त्री–मन की पीड़ा, संग्रह में शिद्दता से व्यस्त हुई है। सत्ता के लिए तब भी और आज भी भाई–भाई एक– दूसरे के दुश्मन बने हुए है।

सत्यभामा जी अपने नाम को सार्थक करते हुए सत्य का निरुपण किया है। सत्य भामा का अर्थ ही है सत्य (यथार्थ)की ज्योति, यथार्थ को धारण करने वाली स्त्री। इसीलिए सत्यभामा जी ने बड़ी बेबाकी से सच को, चाहे वह कितना ही कटु क्यों न हो, प्रस्तुत किया है। (एक प्रकार से वे समकालीन यथार्थ की संगम कलमकार है। महाभारत के विभिन्न पर्वों, श्लोकों को उद्धत कर लेखिका ने कहानियों को प्रामाणिक बनाया है। चाहे बात स्त्री और दलित विमर्श भी हो, छल–कपट या कूटनीति की हो, प्रेम, त्याग या मर्यादा की हो, शायद ही कोई पक्ष हो जो कृतिकार की रचनात्मक ज्रद से बाहर रहा हो आज भी कई कुरुक्षेत्र हैं जहाँ स्वार्थ और सत्ता की राजनीति होती है। द्रौपदी, कुंती, गांधारी ने जो देखा–भोगा, वह किसी से छिपा नहीं है। एक और अंबिका के गर्भ से उत्पन्न दृष्टिहीन धृतराष्ट्र है (जो सब ओर से आंखें मुँदे हैं) तो दूसरी ओर राजनीति के कुचक्र मे फँसी – छटपटाती महारानी गंधारी हैं जो आँखों पर पट्टी बाँधे है। इसके कुछ दुष्परिणाम हुए वह अपने पुत्रों का सही मार्गदर्शन नहीं कर सकी, इसका संकेत युद्धक्षेत्र कहानी में मिलता है। द्रौपदी है जिसे अपनी सम्पति मान पुरुष दाँव पर लगा देता है; वह भी तब जब जुए में हारकर वह यह अधिकार खो चुक होता है। स्त्री पर एकाधिकार मानने वाले पुरुषों की आज भी कमी नहीं है। द्रौपदी की विवशता देखिए कि उसे पांच पुरुषों की पत्नी बनकर रहना पड़ा। उसका ब्याह तो अर्जुन से हुआ था। उसने कुंती के फैसले का विरोध क्यों नहीं किया ? स्त्री–अस्मिता के ऐसे उद्धरणों की चर्चा किताब का हिस्सा है। हिमखण्डों में गिरी या जुए में हारी हुई पांचाली का साथ किसी ने नहीं दिया (विभाजित व्यक्तित्व)। यहाँ तक कि कर्ण को जन्म देने

का तथ्य कुंती को छिपाना पड़ा। वह सूत-पुत्र कहलाया। आज भी समाज में ऐसे उदाहरण उपलब्ध है। 'तलाशजारी है, अनुत्तरित प्रश्न अभिशप्त पांडु और विभाजित व्यक्तित्व' स्त्री जीवन आधारित कहानियाँ हैं। काशी-कन्या अंबा की प्रतिशोध की आग क्या भीष्म के अंत के साथ प्रति हो पायी ? इसी प्रसंग पर परसू, रजनी और मालिक मकान की कहानी 'पुनर्जन्म' केन्द्रित रजनी का प्रतिरोध अधूरा ही रहा। वह किसी की न हो सकी। कृष्णा और उसकी पाँच बेटियों की लाचारगी को व्यक्त करती कहानी है 'मैं भी कृष्णा'। एक तरह से नियोग का समर्थन करती कथा है 'लता पुष्पित हुई। ऋग्वेद में समाज के नियंत्रक व्यक्तियों की सहमति से अन्य पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर संतान उत्पत्ति की अनुमति का उल्लेख है। यह समाज-व्यवस्था का ही एक अंग था जिसमें वंश को नष्ट होने से बचाने के लिए ऐसे प्रयोग की अनुमति थी। लेकिन लिव इन और देह की आजादी के नाम पर अब इसका विकृत रूप हमारे सामने है।,

स्त्री-विमर्श की तर्ज पर दलित विमर्श की चर्चा की जाए तो गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा दान में माँगा अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुधारी घोषित किया था। आज भी जातिगत भेदभाव के चलते योग्य को दरकिनार कर नकली को तवज्जो देने की कुटील चाल चली जाती है। लेखिका ने शकुनि दुर्योधन दु:शासन, आदि पात्रों को समकाल से जोड़कर कुछ अच्छी कहानियाँ रची है। कथा-कहन की उनकी अपनी विशिष्ट शैली है। एक सतत प्रवाही भाषा है उनके पास। शिल्प की सादगी में गहराई है। लोक कहानीकार की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ है। कई कहानियाँ ग्रामीण परिवेश की हैं। केवल युद्ध और घृणा की चर्चा नहीं है।, नैतिकता और मर्यादा का जिक्र भी है जब भीष्म युधिष्ठिर को राजधर्म, राजा-प्रजा सम्बन्धी और सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में बताते है!

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

पुस्तक समीक्षा

लोक में कबीर

– विजय मनोहर तिवारी

पुस्तक विवरण–

पुस्तक	:	लोक में कबीर
सम्पादक	:	डॉ. कपिल तिवारी
संस्करण	:	प्रथम, वर्ष 2007
मूल्य	:	₹300/–
प्रकाशक	:	आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, भोपाल (म.प्र.)

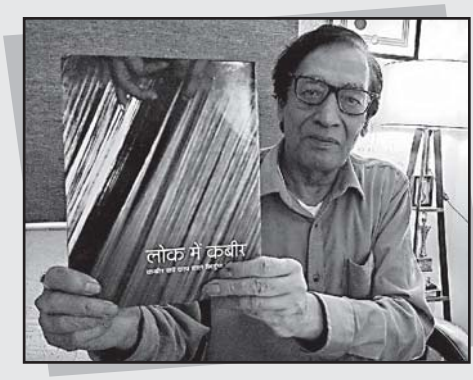

'कहत कबीर सुनो भई साधो बात कहूं मैं खरी
कि दुनिया एक नंबरी, तो मैं दस नंबरी।'

1976 में मनोज कुमार की सुपरहिट फिल्म दस नंबरी में मुकेश के गाए इस गीत को मजरूह सुल्तानपुरी ने लिखा था, जिसकी पहली पंक्ति कबीर की लोकव्याप्त लाइन है–'कहत कबीर सुनो भई साधो।'

कबीर के पदों को पढ़ते और सुनते हुए शायद ही हममें से किसी ने इस बात पर गौर किया हो कि कबीर साधु को क्या और क्यों सुना रहे हैं? वे सिर्फ साधु को ही संबोधित नहीं हैं। उनकी पूरी वाणी चार संबोधियों में है। पहली श्रेणी संत को संबोधित है, जिसे साखी कहते हैं। साखी अर्थात् साक्षी। दूसरी श्रेणी साधु की है, जिसे शबद कहा गया। तीसरी श्रेणी अवधूत की है, जो रमैनी कहलाती है। चौथी में कबीर स्वयं से संबोधित हैं और इसे बीजक कहते हैं।

भारत की लोक संस्कृति के प्रख्यात अध्येता पद्मश्री डॉ. कपिल तिवारी ने 15 साल पहले लोक में व्याप्त कबीर को सहेजने का एक अकादमिक प्रयास किया था, जो 2007 में पुस्तक के रूप में छपकर आया–'लोक में कबीर।' इस काम में उन्हें सात साल लगे थे। डॉ. कपिल तिवारी मध्यप्रदेश आदिवासी एवं लोककला अकादमी में 30 साल निदेशक रहे थे और जनजातीय समाज से जुड़े ऐसे अनगिनत जमीनी शोध कार्यों में उन्होंने खुद को खपाया, जो आज भी युवा शोधार्थियों और विद्वानों के लिए एक नई दृष्टि और नई दिशा देते हैं। वह केवल यहां–वहां से ईंट–गारा जोड़कर अपने बायोडाटा को भारी–भरकम बनाने वाला भानुमति का कुनबा टाइप कूड़ा काम नहीं था, जैसा कि देश की ज्यादातर अकादमियों में होता रहा है। लोक में कबीर इसकी एक मिसाल है।

कपिलजी कहते हैं कि कबीर को जो कुछ परिवारों को संबोधित करना था, वह संतों को किया क्योंकि संत गृहस्थ भी होते हैं। वे परिवारों में रहते हैं। जो समाज से कहना था, वह साधु को संबोधित किया, क्योंकि साधु परिवार को तो त्याग देता है लेकिन समाज में विचरण करता है। इससे आगे साधना के गहन अनुभव में उतरे हुए अवधूत को वे संबोधित होते हैं। सबसे आखिर में कबीर स्वयं को संबोधित हैं, एक ऐसे कबीर से जो शरीर में है और यह जानता है कि यह शरीर एक दिन गिर जाएगा। लेकिन उसने उसे जान लिया है, जो अमृत है, अजर–अमर है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। कबीर के जीवन भर के बोल–वचन इन चार श्रेणियों में ही हैं– साखी, शबद, रमैनी और बीजक। गुरु ग्रंथ साहब में कबीर के शब्द सर्वाधिक हैं।

कबीर भारत के उस कालखंड में पैदा हुए, जब दिल्ली में तुर्क मुसलमानों को कब्जा जमाए दो साल से ज्यादा हो गए थे और कबीर का अवसान तब हुआ, जब मुगलों ने कब्जा जमाया नहीं था। बाबर के आने के पहले वे नहीं रहे। राजनीतिक और सामाजिक रूप से वह भारत का भयावह कालखंड था। समाज के भीतर कहीं एक लहर थी, जिसमें भारत की आध्यात्मिक चेतना को हम बहता हुआ साफ देख सकते हैं। कबीर उसी चेतना के एक लाइट हाऊस की तरह आए और संचार साधनों से हीन उस दौर में आज के इंटरनेट की तरह लोक में व्याप्त हो गए।

लोक में कबीर नामक इस ग्रंथ में कपिलजी ने बुंदेली, निमाड़ी, मालवी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, मैथिली, भोजपुरी और राजस्थानी में प्रचलित कबीर को 23 अध्यायों में संजोया है। हर इलाके के गंभीर शोधकर्ताओं तक वे गए, जिन्होंने अपने आसपास व्याप्त कबीर पर दृष्टि केंद्रित की थी। कबीर के कलश से छलका अमृत जहां-जहां भी बिखरा और स्थानीय बोलियों में पुष्पित-पल्लवित हुआ, वह सब सहेजा गया और पहली बार एक संग्रहीत रूप में ज्ञात हुआ कि कबीर की देशना कैसे भारत की आत्मा में समा गई थी।

क्षितिमोहन सेन बंगाल के एक प्रतिष्ठित विद्वान हुए हैं, जो हजारी प्रसाद द्विवेदी के गुरु माने जाते हैं। क्षिति मोहन की नजर बंगाल में व्याप्त कबीर पर गई और वे हैरान हुए कि बांग्ला में कबीर की वाणी कहां-कहां किस-किस रूप में उतरी हुई है। उन्होंने बांग्ला में पदों को संकलित करके शांति निकेतन में गुरुदेव रबींद्रनाथ टैगोर को सौंपा था। टैगोर ने पहले तो उस पर गौर नहीं किया, लेकिन जब देखा तो वे भी चकित हुए बिना नहीं रहे। अंतत: जिस साल टैगोर को नोबल पुरस्कार मिला, उसी साल उनकी अंग्रेजी में किताब आई- '100 पोइम्स ऑफ कबीर।' नोबल ने टैगोर को विश्व में प्रसिद्ध कर दिया था। उनकी इस रचना से कबीर भी एक विश्व भाषा पर सवार हुए और विश्व को कबीर का पहला परिचय हुआ।

अकादमी में निदेशक के रूप में आने भर से कबीर पर यह गहन-गंभीर काम नहीं हो गया। कपिलजी बताते हैं कि कबीर से उनका रिश्ता स्कूली दिनों से बना। सागर के कबीर मठ में महंत बालकृष्ण दास प्रमुख थे, जिनसे कपिलजी के एक चचाजान जुड़े हुए थे। कपिलजी स्कूल में पढ़ते थे और महंतजी की सेवा में प्रस्तुत रहा करते थे। महंत बालकृष्ण दास कबीर के 12 निकट और सबसे प्रमुख शिष्यों में से एक धरमदास की परंपरा में थे। धरमदास ने कबीर के बाद अमरकंटक को अपना केंद्र बनाया था, जो बाद में वर्तमान छत्तीसगढ़ के दामाखेड़ा चले गए थे। धरमदास की यह अकेली गादी है, जिस पर वंशानुगत उत्तराधिकारी होते आए हैं।

कपिलजी के जीवन के आरंभिक 10-12 साल मठ की आबोहवा में गुजरे। उन्हें वे शामें अब तक याद हैं, जब मठ में बाहर से आने वाले कबीरपंथियों की संगत हुआ करती थी। केवल ढपली और एकतारे पर कबीर के पदों को गाने के लिए जब वे बैठते थे तो ऊर्जा की एक लहर हर तरफ भर जाती थी। ये कबीरपंथी यात्राओं में रहते थे और सागर के मठ में कुछ दिन के पड़ाव के बाद प्रस्थान कर जाते थे। फिर दूसरी कोई टोली आ जाती थी। सागर के तट पर कबीर की लहरें टकराती रहती थीं। कबीर पर गंभीर शोध करने वालों में रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और परशुराम चतुर्वेदी जैसे गिने-चुने नाम ही हैं।

15 बरस हो गए, जब लोक में व्याप्त कबीर को इस किताब में सहेजकर तैयार किया गया। अकादमी से विदा हुए कपिलजी को 11 साल हो गए। उनसे चर्चा किसी भी विषय पर आरंभ हो, कबीर उन्हें छुए बिना रहते नहीं हैं। कबीर का जिक्र आते ही कपिलजी पगडंडी पर ठहर जाते हैं। लगता है कि वे सागर की संगत में जा पहुंचे हैं, जहां कबीरपंथियों की कोई टोली हवाओं में अमृत घोल रही है। आपको अपने विषय की तरफ उन्हें खींचकर लाना होता है।

कपिलजी उन मूढ़मति दुष्ट वामपंथियों पर ठहाके लगाते हैं, जिन्होंने कबीर में एक सेक्युलर, सुधारक, क्रांतिकारी और धार्मिक भेदभाव का विरोधी भर देखकर अपने समय की इतिश्री कर ली। इस प्रकार उन्होंने कबीर को भी एक वामपंथी विचारक बना दिया। आजादी के बाद ऐसे दुष्टों ने चुन-चुनकर कबीर के ऐसे पदों को ही पढ़ाया और सुनाया, जिसे देख-पढ़कर लगे कि कबीर सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ हिंदू-मुस्लिम एकता के कोई प्रवक्ता भर थे। 'लोक में कबीर' की तीन पेज की भूमिका में कपिलजी ने वामपंथियों को कबीर की शैली में ही एक जोरदार लप्पड़ लगाया है। यह किताब केवल इसी भूमिका के लिए पढ़ी जानी चाहिए, जो कबीर के व्यापक फलक को खोलती है।

साधो, देखो जग बौराना, साँच कहो तो मारन धावे
झूठा जग पतियाना....

कबीर समाज को पागल कह रहे हैं, जो सच्ची बात कहने पर मारने के लिए दौड़ता है।

हम न मरि हैं, मरि है संसारा, हमको मिला जियावन हारा...

कबीर अपने अमृत की घोषणा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि यह संसार मरेगा, लेकिन हमने वह पा लिया है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। डॉ. कपिल तिवारी इन दो पदों के हवाले से कबीर की असल ऊंचाई और असल गहराई के आखिरी सिरों तक कबीर को अनुभव करने का आग्रह करते हैं। और तब लगता है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में कबीर को कितना संकुचित और सीमित करके पढ़ाया गया। क्या वे सेक्युलर और सुधारक संत भर थे, जो सामाजिक भेदभाव को दूर करने और सांप्रदायिक एकता का कोई गांधीवादी दर्शन लेकर गांधी से चार सौ साल पहले आ गए थे!

'सुनो भई साधो' कबीर की आत्मा से झरे वचन हैं, लेकिन मजरूह तक आते-आते हमारी दुनिया एक नंबरी नहीं, दस नंबरी की दस नंबरी ही है!

■

पुस्तक समीक्षा

महफ़िल शब्द-सुरों की

- डॉ. शिल्पा बहुलेकर

पुस्तक विवरण-

पुस्तक	:	मैफल शब्द-सुरांची
लेखक	:	डॉ. श्यामला कारखानीस
संस्करण	:	प्रथम
मूल्य	:	₹250/-
प्रकाशक	:	संस्कार प्रकाशन, मुंबई (महा.)

''रागांच्या या छाए खाली, सप्त-सुरांची जमली मैफल,
शब्दांना त्या कवेत घेऊन, सुर बरसले बंदिश होऊन''

इस सुमधुर मराठी काव्य का अनुवाद करना कठिन है किन्तु वह कुछ इस प्रकार किया जा सकता है:

''रागों की छांव तले, सप्त-सुरों की सजती महफ़िल,
शब्दों को आलिंगित करते. सुर बरसे. होकर बंदिश ॥''

यह सुंदर काव्य हमारे मन के तारों को स्पर्श करता है. बंदिश संग्रह बंदिश शब्द-सुरांची के पृष्ठों में। शास्त्रीय गायिका डॉ. श्यामला कारखानीस ने यह संग्रह अपने गुरुजनों को समर्पित किया है।

कंठ-संगीत में बंदिश का स्थान अविवादित है। प्रस्तावना में लेखिका लिखती हैं ''राग की प्रस्तुति में शब्दों से घिरे हुए स्वरों का आभा-मंडल ही बंदिश है।'' स्वर-भाव एवं शब्द-भाव के विलय से राग-भाव स्वयं एव प्रकट होता है। स्वरों एवं शब्दों में निहित लय के परस्पर सहयोग से विशिष्ट रागों में लय-ताल-बद्ध आकृति का सृजन होता है, और यही तो है ''बंदिश''!

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में 'बंदिश' घटक की 300-350 वर्षो की परंपरा है (अंदाज़न 1719 1756 से आगे)। सैंकड़ों बंदिशों को विविध भाष्यों में बांधने वाले संगीतकार अर्थात 'सदारंग' खां साहेब नियामत खान, बंदिशों में स्वयं को अक्सर मुहम्मदशाह सदारंगीले उपनाम से सम्बोधित करते थे। 'सदारंग' की बंदिशें आज भी सुप्रचलित हैं। 'ख्याल' गायन की नींव रखी तो सदारंग ने ही। उक्त काल-खंड से बंदिशों का निर्माण निरंतर जारी है। आज भी सिद्धहस्त कलाकार बंदिशों का सृजन कर रहे हैं। ज्येष्ठ बंदिशकार तथा गायक डॉ. विकास कशालकर के अनुसार ''बंदिश रचना ही संगीत-साधक की साधना की सर्वोच्च अवस्था है। राग का व्यापक स्वरुप एक लघु-बंदिश में समाविष्ट हो जाता है। बंदिश-रचना ही भारतीय संगीत की आत्मा है''!

पं. कुमार गन्धर्व बंदिश के विषय में कहा करते थे ''गायकी को बंदिश तभी सिद्ध कर सकती है जब वह राग से संवाद साध सके। बंदिश के अक्षर एवं नाद बहुत कुछ कह जाते हैं। बंदिश से राग का जनन होना चाहिए। बंदिश को मुखर करने के लिए उसका 'मुखड़ा' तो आकर्षक हो!''

संगीतज्ञ श्री वा. ह. देशपांडे का मत है ''बंदिश बांधना कवि का कार्य नहीं, इसके लिए उसका सच्चा गायक होना आवश्यक है। वह संगीतज्ञ हो। एक बंदिश-रचनाकार को संगीत व साहित्य- दोनों में सिद्धहस्त होना आवश्यक है!

पुस्तक की प्रस्तावना लिखते हुए लेखिका की गुरु डॉ. माधुरी डोंगरे मर्मभेदी शब्दों में लिखती है, बंदिश निर्मिती कलाकार के राग-मंथन का नवनीत होता है। इसकी प्रचिती डॉ. श्यामला की बंदिशों में मिलती है। हर बंदिश हमें राग के मौलिक स्वरूप का दर्शन कराती है।

लेखिका डॉ. श्यामला कारखानीस जी ने अपने बंदिश संग्रह में विविध विषय लेकर, विविध रागों में तथा अनवट रागों मे भी

बंदिशों की निर्मिती की है। बंदिशों के विषय, परंपरा की हिफाजत करने वाले हैं। लेखिका ने विषय के अनुसार बंदिशों को विभक्त किया है। यह प्रयास अपने आप में अनूठा है। विषय इस प्रकार है: 'परमेश्वर-चिंतन', 'नाद-देवता', 'सदाचार-चिंतन', निसर्ग-देवता, 'कान्हा', 'मितवा', 'रागमाला' और 'तराना'। विस्तार से ये इस प्रकार हैं:

परमेश्वर-चिंतन

प्रभु का स्मरण, दर्शन की आस, शरण-भाव ये भाव बंदिश के काव्य में व्यक्त होता है।

पलक न लगे तोरे दरस बिना,
चैन न आये मोहे रैन दिना ॥

ये रचना राग भीमपलास में की गई है। इस भाग में 15 बंदिशें विविध रागों तथा तालों में निबद्ध है।

नाद-देवता

ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम 'नाद' निर्मिती हुई। ''सुनता है गुरु ग्यानी ग्यानी'' इस कबीर के निर्गुणी भजन में कहा गया है-

पहले आये नाद बिंदु
नाद बिंदुके पीछे जमाया पानी ॥

नाद ब्रह्म के पश्चात् सृष्टी की निर्मिती हुई है। इस कथन को कहने वाली एक बंदिश राग केदार मे:

नाद लय ब्रह्म एक है
ब्रह्मांड की निर्मिती प्रणव ओंकार है ।।

राग दुर्गा में भी एक आकर्षक बंदिश इस प्रकार है:

नादब्रह्म है तानपुरा,
सप्त सुरो का इसमें बसेरा ॥

सदाचार चिंतन

इस विषय में रचना सात्विक विचार-लावण्य से अर्थपूर्ण तथा नाद-मधुर की गयी है-

मोरा मैका याद आए
जिया मोरा तरसाये ॥

उक्त बंदिश में मायके की प्रखर आस है।

एरी मेरी सखी री

इस बंदिश में मैत्री के मधुर भाव की भीनी भीनी खुशबु का आभास होता है।

निसर्ग देवता

निसर्ग अर्थात प्रकृति के सान्निध्य में कला की नवनिर्मिती होती रहती है। यह विश्वात्मक शक्ति, प्रेरणा कारी असीमित शक्ति है।

बंदिश:

कुदरत का यह नजारा, रंग बिरंगा जग सारा ॥

वैसे ही दूसरी एक बंदिश है:

चांदनी रात मे झील का पानी,
चांदी की चादर जैसे पहनी... ।।

ऐसे मनोरम शब्दों से प्रकृति-वर्णन के शब्द-चित्रों का रेखांकन किया गया है।

कान्हा

इस विषय की बंदिश:

पैंजनिया झनके झनन झन् झनन,
चूड़ियां जो खनके मोरी खन-खनन ।।

राग कल्याण की यह बंदिश मानो शब्द और सुर का संवाद हो!

त्रिताल में पांच मात्राओं का मुखड़ा लेकर पंचम पर सम रखने से मुखड़ा उठावदार तो हुआ ही है, बंदिश का डोलना मनमोहक प्रतीत होता है।

कान्हा तो हैं नटखट कृष्ण-कन्हैया, और प्रेमिका, राधा!

मितवा

लेखिका ने अनेक रूपों में प्रेम भक्ति, विरह के भाव का निर्माण स्वरों और शब्दों द्वारा इस खंड में किया है।

आ जा रे मोरे मितवा, बिन तोरे सूना है मंदरवा।
मदमाती यह सावन रितवा, करके मैं सोलह सिंघरवा।
कब से तरसी तोरे दरसवा ॥

गोपी-बसंत नामक अनवट दक्षिणी राग में यह बंदिश मनमोहक स्वरों में रची गयी है। राग सारंग और मल्हार में रचित रागमालाएँ विविधता के कारण आकर्षक लगती हैं। एक ही राग के विविध रूप एक बंदिश में स्वर-बद्ध किये गए हैं। यह नवीन प्रयोग स्तुति-योग्य है। सारंग की रागमाला और मल्हार रागमाला स्वर-बद्ध करते समय उन रागों के चलनानुसार उनके स्पष्ट रूप दर्शाए गए हैं। प्रत्येक बंदिश में अंतरे की आखिरी दो मात्राओं की तान लेकर सम पर लौटना यह शैली उल्लेखनीय है।

निश्चय ही यह पुस्तक संगीत के अभ्यासकों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

संपर्क- ''जीनिया'', दाहिनी भुसारी कालोनी,
4 बी, न्यू इंडिया स्कूल के समीप, कोथरुड, पुणे 411038,
मोबाइल:- 9867467497
(हिंदी अनुवाद: सौ मधुलिका बोकील)

■

पुस्तक समीक्षा

संगीत शिक्षा और व्यक्तित्व विकास

- डॉ. शिल्पा बहुलेकर

पुस्तक विवरण-

पुस्तक	:	संगीत शिक्षण आणि व्यक्तिमत्व विकास
लेखक	:	डॉ. श्यामला कारखानीस
संस्करण	:	प्रथम
मूल्य	:	₹250/-
प्रकाशक	:	संस्कार प्रकाशन, मुंबई (महा.)

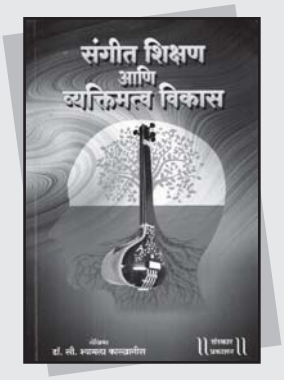

''संगीत शिक्षण-व्यक्तिमत्व विकासाचे एक महत्वपूर्ण साधन'' (हिंदुस्तानी कंठ-संगीताच्या संदर्भात) यह मराठी-भाषा लिखित शोध-प्रबंध डॉ. श्यामला कारखानीस जी ने प्रस्तुत कर गांधर्व महाविद्यालय की 'संगीताचार्य' उपाधि सम्पादित की है। हिंदी में विषय का अनुवाद हम इस प्रकार कर सकते हैं संगीत शिक्षा- व्यक्तित्व विकास का एक महत्वपूर्ण साधन''। यह प्रबंध केवल शोध-कार्य तक सीमित न रह कर जन-मानस तक पहुँचे इस उद्देश्य से इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है।

पुस्तक में संगीत साधकों को, विद्यार्थियों को और रसिकों को मार्गदर्शन प्रदान करने वाले अनेक मुद्दे पठनीय हैं. सहज, प्रासादिक भाषा-शैली में संगीत के विभिन्न बिंदुओं को सुक्ष्म अभ्यास कर, प्रस्तुत किया गया है । लेखिका के बिंदुवार लेखन में एक अनुशासित योजनाबद्धता है। लेखिका को उनकी गुरु, मार्गदर्शिका तथा जानी-मानी संगीतज्ञ डॉ माधुरी डोंगरे का बहुमूल्य मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है, संगीतज्ञ तथा गायक डॉ विकास कशालकर जी की प्रस्तावना भी स्तरीय होकर विषय-वस्तु का योग्य मार्गदर्शन प्रदान करती है। संगीत साधक के लिए आवश्यक गुण, कौशल्य, दृढता एवं मूल-तत्त्व का विश्लेषण प्रस्तावना में बखूबी किया गया है।

सर्वप्रथम शिक्षण तथा संगीत- शिक्षण की व्याख्या करते हुए लेखिका कहती हैं ''शिक्ष, धातु से निर्मित 'शिक्षण' शब्द का अर्थ है उपदेश करना एवं व्यक्तित्व में परिवर्तन लाना। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया शिक्षण का ही फल है।

शिक्षण के उद्देश्य विविध रूप से हमारे व्यक्तित्व का विकास सम्पादित करते हैं। शिक्षण जीवन-यापन का साधन तो है ही, उपजीविका, व्यवसाय, ज्ञान-प्राप्ति, प्रेरक सकारात्मकता ये सब विद्या एवं कला के ध्येय हैं।

संगीत कला भी है और शास्त्र भी। शास्त्रीय पक्ष परिभाषित करते हुए डॉ. कारखानीस संगीत- शिक्षा के बीस अंग उदाहरण सहित प्रेषित करती है। राग गायन की महफ़िल के आदर्श प्रारूप की व्याख्या करते हुए राग का अंतरंग सुस्पष्ट किया गया है। बारह मुद्दों सहित इस विषय की सविस्तार चर्चा की गयी है। राग में सौंदर्यनिर्माण का सामर्थ्य है। स्वर-संवाद, स्वरोच्चार, न्यास, लय-वैचित्र्य, इत्यादि जैसे अनेक बिंदुओं के माध्यम से यह व्याख्या हम पुस्तक में पढ़ते हैं। यह संगीत-साधक के लिए प्रासंगिक ही है। संगीत शस्त्राभ्यास के घटकों का विश्लेषण करते हुए नाद, श्रुती स्वर-लगाव, घराना, ताल-वैशिष्ट्य जैसे अनेक संकल्पनाओं को पुस्तक में परिभाषित किया गया है।

व्यक्तित्व के विकास के लिये संगीत का क्रमबध शिक्षा लेना कितना उपयोगी है ये सिद्ध करते हुए संगीत के घटकों की चर्चा की गयी है। जैसे-

संगीत-साधना करने के पूर्व ॐकार-साधना करनी चाहिए। इसके लिये ॐकार की उपयोगिता को स्पष्ट किया है। स्वरसाधना तथा आदर्श राग प्रस्तुतीकरण कैसे किया जाता है। आदि विधाओं

का विस्तार से वर्णन किया गया है।

गायन से श्वसनक्रिया की सभी इन्द्रियों का व्यायाम होता है, जिससे कार्यक्षमता बढ़ती है। कंठसंगीत से शरीर तथा मन को विश्रांति मिलती है। गायनशैली के प्रस्तुतिकरण में लय और ताल का अभ्यास अति आवश्यक है जिसमें गणिति क्षमता का भी विकास होता है।

संगीत में राग, जोड़राग तथा अनवट रागों का ज्ञान आत्मसात करने से विचारशक्ति, ग्रहणशीलता, प्रयोगशीलता और बुद्धि की विश्लेषण शीलता बढ़ती है। राग गायन में गायक नियोजन कौशल्य और सौंदर्यतत्व से महफिल सजा सकता है। उस्फूर्त गायन चैतन्यपूर्ण होने से मनुष्य को जीवन जीने की स्फूर्ति मिलती है, यही हिंदुस्तानी कंठ- संगीत की विशेषता है। इसीलिए गायन से कलाकार के व्यक्तित्व में बहु-श्रुतता आती है।

संगीत शिक्षण लेने की प्रक्रिया में मानस में सकारात्मकता का संचार होता है। विनयशीलता, श्रद्धा, संयम जैसे नैतिक मूल्यों का संवर्धन होता है। सहकार्य और सहचार से प्रगत होना, यह स्वभाव का अंग बन जाता है। इस प्रकार व्यक्तित्व विकास के जो पांच अंग माने गए हैं, शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक व सामाजिक- इन सभी का विद्यार्थी के वर्तन में विकास होता है।

संगीत-शिक्षण के महत्व का कथन करते हुए लेखिका डॉ. श्यामला कारख़ानीस विचार व्यक्त करती हैं कि शालेय अवस्था में व्यक्तित्व विकास की गति अधिक तीव्र होती है, अत: शालेय स्तर पर संगीत-शिक्षा के प्रवास का प्रारम्भ कर लेना चाहिए। अनेक ज्येष्ठ कलाकारों ने भी यही राय व्यक्त की है।

लेखिका के मतानुसार ''क्रमबद्ध संगीत प्रशिक्षण से जो भी व्यक्तित्व निर्मित होते हैं, अर्थात कलाकार, गुरु, संगीतज्ञ वाग्गेयकार, लेखक, सुविद्य श्रोता, सभी में समृद्ध व्यक्तित्व के लक्षण छलकते हैं।''

संगीत से जुड़े हुए अन्य पात्र, जैसे की रसिक-श्रोता, संगीत-संयोजक ध्वनिमुद्रक,संगीतोपचार करने वाले संगीतज्ञ इन सभी घटकों का लेखिका ने सविस्तार सोदाहरण परामर्श लिया है। उनकी अनुभव-सम्पन्नता और संगीत-विषयक संशोधन उत्तम मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

सारांश: ''संगीत-शिक्षा का प्रत्येक घटक विद्यार्थी में अनेक गुणों का संवर्धन करता है एवं व्यक्तित्व-विकास को प्रगति देते हुए योग्य दिशा प्रदान करता है..''

संपर्क- ''ज़ीनिया'', दाहिनी भुसारी कालोनी, 4 बी, न्यू इंडिया स्कूल के समीप, कोथरुड, पुणे 411038,
मोबाइल:- 9867467497
(अनुवाद: सौ मधुलिका बोकील)

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	**खाता का नाम**	:	कला समय
2.	**खाता संख्या**	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	**बैंक शाखा**	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	**आईएफएस कोड**	:	PUNB0093210

प्रबंध संपादक

सूचना

अपरिहार्य कारणों से चित्रकला और चित्रकार, प्रो. डॉ. लक्ष्मीनारायण भावसार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर केन्द्रित विशेषांक स्थगित कर दिया गया है। जिसका हमें खेद है।

- संपादक

पुस्तक समीक्षा

विष्णुश्रीधर वाकणकर की स्मृति में भारतीय मुद्रा विज्ञान एवं मुद्रा अध्ययन शास्त्र संस्थान का शोध प्रबंध ग्रंथ

– शशिकांत लिमये

पुस्तक विवरण–

पुस्तक	:	जर्नल
संपादक	:	प्रो.एस.के. भट्ट और डॉ. पंकज अमेटा
संस्करण	:	प्रथम, 2021
मूल्य	:	₹800
प्रकाशक	:	सिद्धार्थ ऑफसेट, इंदौर (म.प्र.)

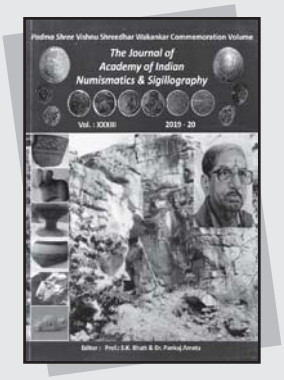

मुख्य सम्पादक प्रो. एस. के. भट्ट साभार प्राप्त हुई पुस्तक विशुद्ध रूप से पुरातत्व की जानकारी से परिपूर्ण है। जिसके मुख्य पृष्ठ पर भीम बैठका के गिरी द्वार (गुफा) के साथ स्व. श्री विष्णु श्रीधर वाकणकर का गंभीर और स्मित हास्थ वदन छाया चित्र पुस्तक की कोतुहुता को बढावा देता है। प्राचीन मृदभाण्ड जिन पर नक्षीकारी की गई है, पशुओ के चित्र और अन्य पुरातत्व सामग्री, अन्दर के पृष्ठो की और उनके रहस्य जानने के इच्छुक लोगो को पढने पर मजबूर करती नजर आती है। मनोरम पृष्ठ के अनुरूप स्व. श्री वाकणकर जी के सस्मरण दर्शाते छाया चित्र पुस्तक के शीर्षक के अनुरूप लगते है। पुस्तक के अन्दर पुरातत्व की सामग्री से इतिहास संवर्धन करते पन्द्रह आलेख और तीन पुस्तक समीक्षायें संकलित की है।

पुस्तक का प्रथम आलेख स्व. श्री विष्णु श्रीधर वाकणकर जी को समर्पित है जिसका शीर्षक व्हार वक स्पीकस..... उनके जीवन शैली में पुरातात्विक अवशेषों के प्रति अध्ययन शीलता उनकी विचार धारा और कार्य शैली के वर्णन के साथ उनके उत्खनन कार्यो का विस्तृत विवरण है। श्री वाकणकार जी की कार्यशैली मे कार्य को आगे बढ़ाने के लिए जो नये सैनिक चाहिये अर्थात् वह जुनूनी नवयुवक जो पुरातत्व के मर्म को जन–जन तक पहुंचाने का कार्य कर सके उसका भी वृहद् उल्लेख किया गया है। अपने शिष्यों के गुणो के पारखी श्री वाकणकर जी पर लिखा यह आलेख उनेक पुरातत्व के योगदान को विस्तृत व्याख्या करने का उपक्रम करता है, यह प्रशंसनीय कार्य श्री एल. के. भट्ट जी ने किया है। विभिन्न चित्रों के साथ डॉ. वाकणकर जी का रॉक ऑफ साउथ एशिया उनके प्रशंसनीय कार्यो की बानगी प्रस्तुत करता है। इसे आलेख की चित्र मय सामग्री विद्यार्थियों के लिये विशेष आकर्षण का निर्माण करती है। इसी क्रम मे डॉ. एम. डी. खरे का आलेख ए सेन्चुरी ऑफ पेंटेड रोक्स शोल्टर स्टेडीज ऑफ इंडिया, रॉक आर्ट डिस्क्रिप्शन इन इन्डिया डॉ. वी. एस. वाकणकर विजन मिशन एन्ड कटिन्यूटी उनकी प्रतिभा को निखारने मे सफल रहे हैं। आलेख अनेंक अंग्रेजी में हैं पर सरल भाषा का प्रयोग होने से विद्यार्थियों को समझने में अधिक कठिनाई नही होगी डॉ. मुरारी लाल शर्मा, डॉ. मदनलाल शर्मा और डॉ. विनित गोधाल जी का आलेख न्यूली डिस्कवरड रॉक आर्ट साईट एट मोनियापुर राजस्थान के पुरातात्विक अन्वेषण के साथ वहाँ के इतिहास और भौगोलिक स्थिति को प्रदर्शित करता है। मुद्रा शास्त्र पर आलेख इन्डो ग्रीक्स इन अवम्मी प्रो. एस. के. भट्ट और अरली योलिकारा इपि ग्राफ्स कोईन एन्ड डायनास्टिक नामेक्लेयेर, मुद्रा शास्त्र से इतिहास की तलाश मे मार्गदर्शक प्रतीत होते है। वैसे ही कृष्ण विलास स्टोन डान्स्क्रेपून ऑफ टाईम ऑफ उदयादिन्य, डॉ. जयप्रकाश तत्कालीन इतिहास का प्रकाश डालता है)

डॉ. नारायण व्यास वर्तमान समय के रॉक पेन्टिंग के सिद्ध हस्ताक्षर माने जाते है जिन्होंने अपना पूरा जीवन डॉ. वाकण कर जी के कार्यो को आगे बढ़ाने मे समर्पित किया है, कृष्ण विलास के शैल चित्र, यह आलेख राष्ट्रभाषा हिन्दी में है इसमें पशुओं गाड़ियों,

वादको के चित्रों का विस्तृत वर्णन किया गया है। शैलचित्रो का बारीकी से परिक्षण और उनका विस्तृत आलेख की गरिमा, हिन्दी के आलेखों मे वाकणकर जी का आलेख ऑलिकर वंश के इतिहास पर नया, प्रकाश विलासगढ़ का अल्पज्ञात शिल्पवैशिष्ठ अपने ऐतिहासिक होने के आयामों को छूते नजर आते हैं।

साथ ही सन्दर्भ ग्रंथो की सूची का प्रकाशन भी एक अनुसंधानात्मक जर्नल की महत्वपूर्ण कड़ी प्रदान करता है। यह पुस्तक भविष्य के समस्त शोधार्थियो के लिये महत्वपूर्ण शोध ग्रंथ की सार्थकता प्रदान करती है। पत्रिका में कागज का चयन भी अच्छा है जो लम्बे समय तक संग्रहणीय रहेगा। संम्पादक द्वय श्री प्रो. एस. के. भट्ट और डॉ. पंकज अमेता जी को बहुत-बहुत बधाई एवं सभी इतिहासकारो को शोध आलेखों के लिये,

साधुवाद

- लेखक स्वतंत्र शोधकर्ता है।

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये .....

ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

नाटक

ज़िन्दगी और जोंक

निर्देशन एवं आकल्पन	:	बंसी कौल
प्रस्तुति पटकथा	:	राजेश जोशी
संगीत	:	डॉ. अंजना पुरी
समयावधि	:	1 घंटा 30 मिनट्स (मध्यान्तर नहीं)
स्थान	:	रवींद्र भवन कन्वेंशन सेंटर, भोपाल

कथासार

''ज़िन्दगी और जोंक'' अमरकान्त की एक चर्चित कहानी है। एक भिखमंगा, परजीवी चरित्र, कहानी के केन्द्र में है। जो अपने गाँव की विषम आर्थिक परिस्थिति से उखड़ कर शहर के एक मोहल्ले में अपना डेरा डाल लेता है। शिवनाथ बाबू, भिखमंगे को चोरी के संदेह के कारण पीटते है, बाद में पता चलता है कि साड़ी घर पर ही है लेकिन भिखमंगे को उस गलती की सजा मिल चुकी थी, जो उसने कभी की ही नहीं थी। परिणाम स्वरूप अब मुहल्ले वाले उसके प्रति सहानुभूति रखने बचा हुआ या जूठा खाना उसे खाने को दे देते। एक दिन शिवनाथ बाबू उसे बुलाकर अपने घर ले जाते है और वही उसका नामकरण होता है''रजुआ''।

मुहल्ले के सभी लोग रजुआ पर अपना बराबर का हक समझते। वह पूरे मुहल्ले का नौकर बन गया था। इस कारण अब रजुआ भी थोड़ा ढीठ हो गया था। मुहल्ले की औरतों से हंसी-मजाक भी करने लगा था। शहर में गन्दगी के कारण उसे हैजा, फिर खुजली की बीमारी होने से अब कोई उसे अपने यहाँ नही आने देता था। इसी बीच एक लड़का, कथावाचक को सूचना देता है कि रजुआ मर गया। और वह एक चिट्ठी रजुआ के घर भेज कर सबको सूचित कर दे। पूरा मोहल्ला रजुआ के जाने से शोकाकुल हो जाता है। पर दो-चार दिन बाद रजुआ, कथावाचक के समक्ष उपस्थित होकर बताता है कि उसके सिर पर कौआ बैठ गया था और इस अपशकुन को टालने का एक तरीका यह है कि संबंधित व्यक्ति के झूठमूठ मरने की खबर फैला दी जायें।

कथावाचक यह नहीं समझ पाता है कि वह जिन्दगी से जोंक की तरह लिपटा है या फिर खुद जिन्दगी। वह ज़िन्दगी का खून चूस रहा था या ज़िन्दगी उसका? इतने अभावों में जिन्दगी के प्रति मोह उसकी जिजीविषा को प्रकट करती है।

नाटक के कलाकार

मंच पर

रजुआ	:	कन्हैयालाल कैथवास
शिवनाथ बाबू	:	हर्ष दौण्ड,
जमुना	:	गोमती कैथवास
शिवनाथ बाबू का लड़का	:	वंश साह,
कथावाचक	:	उदय शहाणे
कथावाचक की पत्नी	:	नीति श्रीवास्तव
पहलवान	:	संजय श्रीवास्तव
चेले	:	विमलेश पटेल,
पड़ोसन	:	आयुषी पटेल, किरण मारण, अतुल द्विवेदी
पंडितजी	:	अतुल द्विवेदी,
पोंगा	:	संकित सेजवार
कारीगर / दुकानदार	:	अमित रिछारिया, हरिकृष्ण पटेल इंजमाम-उर-रहमान, मोहम्मद शेफ आलम, राजा ठाकुर, वंश साहू
लकड़हारा	:	हरिकृष्ण पटेल

औरत / पगली	:	आयुषी पटेल / किरण मारण,
पुलिस वाले	:	अतुल द्विवेदी, अमोघ विक्रम सिंह,
जुआरी	:	हरिकृष्ण पटेल, इंजमाम-उर-रहमान राजा ठाकुर
टुनटुन	:	वाणी श्रीवास्तव / रामबाबू लिंडोरिया
मुसाफिर	:	हरिकृष्ण पटेल, इंजमाम-उर-रहमान, मोहम्मद शेफ आलम,
ग्रामीण /मनचले	:	अतुल द्विवेदी, अमित रिछारिया, आयुषी पटेल, अमोध विक्रम सिंह, गोमती कैथवास, हर्ष दौंण्ड, हरिकृष्ण पटेल, इंजमाम-उर-रहमान, किरण मारण, मोहम्मद शेफ आलम, नितिन पाण्डेय, नीति श्रीवास्तव, रामबाबू लिंडोरिया, राजा ठाकुर रिदा फरीद बज़मी, संकित सेजवार, संजय श्रीवास्तव, वंश साहू, वाणी श्रीवास्तव, विमलेश पटेल,

मंच परे

मूल रचना	:	अमरकान्त जी
प्रदर्शन पटकथा एवं रूपान्तरण	:	राजेश जोशी
मंच आकल्पन एवं मंच विधान	:	वेद पाहोजा एवं बंसी कौल
गीत एवं संगीत	:	डॉ. अंजना पुरी
मंच सामग्री	:	कन्हैयालाल कैथवास
पार्श्व संगीत संचालन	:	आदर्श शर्मा
तालवाद्य	:	रामबाबू लिंडोरिया
हारमोनियम	:	दुर्गेन्द्र केवट, जीतेन्द्र
प्रकाश संचालन	:	घनश्याम गुर्जर
वेशभूषा एवं रूपसज्जा	:	फरीद बज़मी
मंच व्यवस्थापक	:	हर्ष दौंण्ड
प्रस्तुति व्यवस्थापक	:	उदय शहाणे, संजय श्रीवास्तव
सह-निर्देशन	:	फरीद बज़मी
परिकल्पना एवं निर्देशन	:	बंसी कौल,

सहायक

प्रदर्शन पटकथा	:	फरीद बज़मी, उज्ज्वल कुमार
प्रकाश संचालन	:	उपेंद्र मोहन्तो
मंचसज्जा	:	अमोघविक्र मसिंह, संकित सेजवार, विमलेश पटेल
मंच सामग्री	:	अतुल द्विवेदी, इंजमाम-उर-रहमान, मोहम्मद शेफ आलम,
संगीत	:	हर्ष दौण्ड, वाणी श्रीवास्तव
वेशभूषा	:	दुरेशाहवार खान रिदा फरीद बजमी, संकित सेजवार
रूपसज्जा	:	अमित रिछारिया, राजा ठाकुर,

संस्था के बारे में...

रंग विदूषक

स्थापना एवं उद्देश्य : सक्रिय युवा रंगकर्मियों का समूह है जो नये रंगशिल्प की अवधारणा पर कार्य करने की कोशिश कर रहा है, साथ ही निरन्तर अभ्यास से नई तकनीकों और विचार को प्राप्त करना हेतु प्रयत्नशील रहा है। वर्ष 1984 में स्थापित एवं वर्ष 1989 में अनौपचारिक रूप से पंजीयन के पश्चात वर्ष 1992 में पूर्णकालिक कलाकारों ने इस अवधारणा के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया।

प्रक्रिया: रंग विदूषक ने दूर-दराज गाँवों में जाकर कथागायकी नटों और लोक शैलियों पर फाफी कार्य किया, नई रंग प्रक्रिया इसी का परिणाम है। इस कड़ी में रंग विदूषक द्वारा वर्ष 1992 में भोपाल में लोक कलाओं के विदूषकों पर आधारित एक विदूषकीय रंगशिविर का आयोजन किया। वहीं परम्परागत एवं लोक नाट्य कलाओं के विशेषज्ञों के साथ ही व्यावसायिक रंगमंच में अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हस्ताक्षरों को भी संस्था द्वारा आमंत्रित किया गया। इस कोशिश में अभिनेतागण जहाँ एक ओर परम्परागत एवं आधुनिक रंगमंच से परिचित हुए उन्हें यहीं आमंत्रित व्यावसायिक निर्देशकों के माध्यम से देश के विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे रंग आन्दोलन एवं रंगकर्म की नवीन अवधारणाओं, प्रयोगों के साथ ही इन निर्देशकों की सृजनात्मकता रचनाशीलता एवं प्रयोगधर्मिता से साक्षात्कार करने का अवसर मिला है। रंग विदूषक ने रिमान्ड होम एवं काम काजी एवं स्कूली बच्चों, बन्दियों, पुलिस एवं युवा रंगकर्मियों आदि के लिये नवीन रंग प्रयोग एवं प्रशिक्षण पर केन्द्रित अनेक रंगशिविर आयोजित किये हैं।

रंगशिविर: आरम्भ से ही रंग विदूषक ने अपनी प्रस्तुतियों की अलग

पहचान बनाई है. यह समूह पूर्णकालिक रूप से विदूषक प्रशिक्षण विधि पर कार्यरत है. जिसके चलते रंग विदूषक ने रिमान्ड होम, काम काजी बच्चों, पुलिस कर्मियों के बच्चों, शालेय छात्रों, बन्दियों तथा पुलिस कर्मियों, युवा रंगकर्मियों आदि के लिये अनेक रंगशिविर आयोजित कर उनमें सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करने का प्रयास किया है। इसके अलावा अन्य रंगसंस्थाओं के साथ समन्वय स्थापित कर शोलापुर ग्वालियर, इन्दौर, उज्जैन, चैन्नई, बैंगलोर, महेश्वर एवं रायगढ़ में रंगशिविर आयोजित किये। प्रशिक्षण की इस बोधशील प्रक्रिया से नई प्रस्तुतियों उभर कर आई है।

उपलब्धियाँ: रंग विदूषक ने अनेक प्रतिष्ठित नाट्य समारोह में भाग लिया वहीं अहिन्दी भाषी क्षेत्रों चैन्नई, विषाखापट्टनम, बैंगलौर, त्रिवेन्द्रम् पणजी, कलकत्ता आदि शहरों में अपने नाटकों का मंचन किया, इसके अतिरिक्त अनेक शहरों में अपने नाटकों का नाट्योत्सव भी आयोजित किये हैं। इसके साथ ही संस्था सूरीनाम, कोलम्बिया, बंगला देश, डेनमार्क, सिंगापुर और पाकिस्तान में आयोजित थियेटर फेस्टिवल में नाटक मंचित कर चुकी है। यही नहीं, रंग विदूषक के कलाकार थाईलैण्ड, स्विटरजर लैण्ड, रूस में आयोजित भारत महोत्सव जर्मनी में पुस्तक मेले दिल्ली में आयोजित 19 वें राष्ट्रमंडल खेल, गोवा में आयोजित त्युसोफोनिया गेम्स 2014 तथा ब्रिक्स एवं चेन्नई में ''आयोजित फुटबाल लीग'' के उद्घाटन समारोह के अवसर पर प्रस्तुत आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि में सम्मिलित हो चुके हैं।

बंसी कौल का जीवन- वृत्त

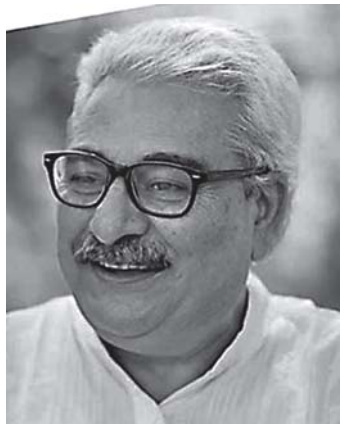

जन्म एवं शिक्षा : 23 अगस्त 1949 को श्रीनगर (जम्मू एवं कश्मीर) में जन्म। अखाड़े, ग्रामीण खेलों, कथा वाचन, नटगिरी, आधुनिक नृत्य पर गहन शोक अभिनय की नई रंग अवधारणा को विकसित किया है।

आकल्पक : अपना उत्सव (1986-87), खजुराहो नृत्य महोत्सव (1988) इंटरनेशनल कठपुटली महोत्सव (1990), नेशनल गेम्स (2001), युवा महोत्सव, हरियाणा (2001) गणतंत्र दिवस समारोह दिल्ली (2002). प्रशांत एशियाई पर्यटक एसोसिएशन 2002) महाभारत उत्सव हरियाणा (2002) आदि के मुख्य आकल्पक ।

फ्रांस (1984) और स्विट्जरलैंड (1985) रूस (1988, 2012) चीन (1994) थाईलैण्ट (1996) एडिनबर्ग मेला (2000, 2001) में आयोजित भारत महोत्सव एवं पुस्तक मेला जर्मनी मुख्य आकल्पक। रंगमंच समूह के संस्थापक और वर्तमान निदेशक

वर्ष 1984 में रंगविदूषक की स्थापना अनेक प्रतिष्ठित नाट्य समारोह में भागीदारी चैन्नई विशाखापट्टनम्, बैंगलौर, त्रिवेन्द्रम, पणजी, कलकत्ता, पुणे, मुंबई, जयपुर, नागपुर अहमदाबाद, उदयपुर आदि शहरों में नाटकों का मंचन

सूरीनाम, कोलम्बिया, बंगला देश, डेनमार्क और सिंगापुर में आयोजित समारोहों में नाटक का मंचन कुवैत, भूटान, चीन, फ्रांस, थाईलैण्ड, स्विटजर लैण्ड़ एवं रूस में आयोजित भारत महोत्सव, ''जर्मनी में'' पुस्तक मेले 19 में राष्ट्रमंडल खेल समारोह गोवा में आयोजित ''लित्सुदानिया गेम्स'' तथा चेन्नई में फुटबाल लीग में कार्यक्रम प्रस्तुति के आकल्पक।

प्रस्तुतियाँ :

हिंदी, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, सिंहली, उर्दू एवं बुदेलखण्डी एवं बघेलखण्डी आदि में लगभग 100 से अधिक नाटकों निर्देशन, जिसमें से आला अफसरी, मृच्छकटिकम, राजा अग्निवर्ण का पैर, अग्निलीक, वेणीसंहार, दशकुमार चरित्तम, शर्विलक, पंचरात्रम, अंधायुग, खेल गुरू का. जो राम रचि राखा, अरण्याधिपति टंट्यामामा, जिन्दगी और जोंक, कहन कबीर, आदि उल्लेखनीय,

शिक्षण :

वर्ष 1980-81 में रानावि में अतिथि व्याख्याता एवं वर्ष 1981-82 के लिए श्रीराम सेंटर, दिल्ली के निदेशक संयुक्त राज्य अमेरिका, श्रीलंका, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस, हॉलैंड, इटली, लंदन, कोलंबिया, सूरीनाम, ग्रीस और बांग्लादेश आदि देशों में भी रंगमंच पर व्याख्यान ।

प्राप्त पुरस्कार :

रचनात्मक उपलब्धियों के कारण इन्हें भारत शासन द्वारा पद्मश्री, के साथ संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, मध्य प्रदेश सरकार द्वारा कालिदास एवं शिखर सम्मान, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सफदर हाशमी पुरस्कार, चमनलाल मेमोरियल पुरस्कार आदि सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। ■

मायाराम सुरजन जन्मशती वर्ष तथा ललित सुरजन की 76वीं जयंती पर सम्मान समारोह एवं व्याख्यान कार्यक्रम

बाबूजी जैसा ईमानदार, कर्मठ, लगनशील पत्रकार मैंने नहीं देखा: डॉ. शंभुदयाल

बाबूजी जैसा ईमानदार, कर्मठ, लगनशील पत्रकार मैंने नहीं देखा, कोई पत्रकार नहीं जिनको उनके बराबर खड़ा कर सकूं। आदरणीय मायराम सुरजन बाबूजी के बारे में यह विचार जाने-माने इतिहासविद् एवं लेखक डॉ. शंभुदयाल गुरु ने व्यक्त किए। वह देशबन्धु पत्र समूह के संस्थापक-संपादक श्री मायाराम सुरजन के जन्मशती वर्ष तथा प्रधान संपादक श्री ललित सुरजन की 76 वीं जयंती पर यहां आयोजित सम्मान समारोह एवं व्याख्यान कार्यक्रम में बोल रहे थे। उन्होंने बाबूजी से जुड़े अनेक संस्मरणों को सुनाया, इस दौरान वह बहुत भावुक हो गए। शीर्षस्थ पत्रकार एवं राष्ट्रीय सेक्युलर मंच के संयोजक लज्जाशंकर हरदेनिया ने बाबूजी के बारे में अपने संस्मरण सुनाते हुए कहा कि सादगी उनकी जिंदगी का महत्वपूर्ण हिस्सा थी। इतने बड़े व्यक्ति होने के बाद भी वह अपना बड़प्पन कभी नहीं दिखाते थे। प्रगतिशील और मानवतावादी मुद्दों को उन्होंने हमेशा उठाया। उनके पुत्र ललित ने भी उनकी परम्पराओं को आगे बढ़ाया।

ख्यातनाम साहित्यकार एवं समाजसेवी सत्यमोहन वर्मा भी बाबूजी से जुड़े संस्मरण सुनाते हुए भावुक हो गए। उन्होंने कहा कि मायारामजी पत्रकारिता के पुरोधा थे। उन्होंने पत्रकारिता को जो दिया वो अनमोल है। व्याख्यान में मुख्य वक्ता के रूप में मौजूद प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं चिंतक प्रो.पुरुषोत्तम अग्रवाल ने श्री मायाराम सुरजन जी को याद करते हुए कहा कि वह मेरे लिए एक किवदंति जैसे थे। उन्होंने ललित जी के साथ हुए अपने संवादों का उल्लेख करते हुए कहा कि शब्दों का प्रयोग बेहद संवेदनशीलता से करना चाहिए। वहीं उन्होंने कबीर: तब और अब विषय पर व्याख्यान देते हुए वर्तमान में कबीर के साहित्य की प्रांसगिकता बताई। उन्होंने कबीर के दोहों का उल्लेख करते हुए उनकी विस्तृत व्याख्या की। श्री अग्रवाल ने कहा कि कबीर के लिए ज्ञान, प्रेम और विवेक महत्वपूर्ण है। उन्होंने इतिहास से लेकर मौजूदा समय तक कबीर की कही बातों को अपने तरीके से श्रोताओं को समझाया। कबीर के साथ ही मीरा के पद भी उन्होंने व्याख्यान के दौरान सुनाए।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए सुविख्यात लेखक एवं आलोचक सूरज पालीवाल ने श्री ललित सुरजन के संस्मरणों को सुनाया। उनके साथ हुई चर्चाओं को उन्होंने साझा किया। उनकी गहन साहित्यिक समझ, निष्पक्षता और बेबाकी के बारे में भी श्रोताओं को बताया। आयोजन की शुरुआत श्री मायाराम सुरजन बाबूजी और श्री ललित सुरजन के चित्रों पर माल्यार्पण तथा दीप प्रज्जवलित कर अतिथियों ने की। तत्पश्चात अतिथियों का पुष्पगुच्छ भेंट कर स्वागत किया गया। इसके पहले हिंदी मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री पलाश सुरजन ने मायाराम सुरजन फाउंडेशन का परिचय दिया। वहीं उन्होंने स्वागत उद्बोधन में अतिथियों के परिचय के साथ आयोजन के संबंध में भी जानकारी दी।

तापस ने कबीर गायन की दी प्रस्तुति

कार्यक्रम में युवा शिल्पकार तापस गुप्त ने कबीर गायन की प्रस्तुति दी। इस एकल निगुर्ण प्रस्तुति में उन्होंने गुरु बिन ज्ञान न उपजे ..., हम परदेशी पंक्षी रे साधु भाई.... और उड़ जाऐगा हंस अकेला, जग दर्शन का मेला....जैसी रचनाएं सुनाई। तानपुरे के साथ दी इन प्रस्तुतियों ने श्रोताओं के कानों में मिठास घोल दी। कार्यक्रम का उम्दा संचालन डॉ. अनुपमा सुरेश द्वारा किया गया। अंत में आभार प्रदर्शन मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यकारी अध्यक्ष प्रो.विजय अग्रवाल ने किया।

इन्हें किया सम्मानित

कार्यक्रम के दौरान ख्यातनाम साहित्यकार सत्यमोहन वर्मा,

जाने-माने इतिहासविद एवं लेखक डॉ.शंभुदयाल गुरु और शीर्षस्थ पत्रकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता राष्ट्रीय सेक्युलर मंच के संयोजक लज्जाशंकर हरदेनिया को मायाराम सुरजन शताब्दी सम्मान से विभूषित किया गया। शॉल श्रीफल और प्रशस्ति पत्र से उनका सम्मान किया गया। वहीं मंचासीन अतिथियों को स्मृति चिन्ह भेंट किया गया।

जी. पी. बिड़ला संग्रहालय भोपाल में भारतीय लोक कला में श्री गणेश प्रदर्शनी

दिनांक 02/09/2022 से 10/09/2022 तक चली प्रदर्शनी श्री योगेश कुमार गुप्ता से.नि. प्रधान जिला न्यायाधीश के निजी संग्रह से प्राप्त समस्त पेंटिंग जी.पी बिड़ला संग्रहलय में प्रर्दशित की गई। इसका विधिवता शुभारंभ शिल्पा गुप्ता आयुक्त पुरात्व, अभिलेखा गार एवं संग्रहालय भोपाल के द्वारा किया गया। भारतीय संस्कृति में सर्व अग्रणी पूज्य श्री गणेश का स्थान पुरातत्वीय विधाओं में शैल गुफाओं से निरंतर किसी न किसी रूप में चला आ रहा है। इस संस्कृति की निरंतरता मृण कला, पाषाण, काष्ठ, धातूओं पुष्पों फलों शिलालेखों, ताडपत्रों, कागजों आदि अनेकानेक विधाओं को समेटे भगवान श्री गणेश को आराध्य मानकर प्रतिबिंबित की जाती रही है।

प्रधान जिला न्यायाधीश के पद से सेवा निवृत श्री योगेश कुमार गुप्ता के निजी संग्रह पर आधारित है उड़ीसा के पटचित्रा, बिहार की मधुबनी, पश्चिमी बंगाल की पटुआ, महाराष्ट्र की वर्ली, ग्वालियर क्षेत्र की चितैरा, श्री गुप्ता जी की सुपुत्री अंशिका और म.प्र. की गौड एवं भील पेंटिग्स को प्रदर्शित किया गया है। गौंड कला के प्रसिद्ध कलाकार स्व. जनगण सिंह श्याम, स्व. कलाबाई, या आनंद श्याम, ननकुशिया सिंह श्याम, संतोष श्याम और मोहन श्याम आदि द्वारा निमिंत्र चित्रकला प्रदर्शित है।

सुदीर्घ अनवरत कला को जन सामान्य ने अपने अपने धार्मिक परंपरा के रहते अपनी कला को उभारा जो राजमहलों से लेकर घर-घर तक फलीफूलित है। इस कला के माध्यम से जीवन यापन का भी माध्यम बनती रही। प्रदर्शनी का मुख्य आकर्षण भारतीय लोक कला के माध्यम से भगवान श्री गणेश का चित्रण उड़ीसा के पट्ट कला, ताडपत्र केनवास पर श्री गणेश पुराण में कथानको का चित्रण, पश्चिमी बंगाल पाट, कालीपाट कला में तंतुवादक, वात्सल्यस्नेह, विष्णु के रूप में, माता की स्तुती, तंजावूर कला में सुनहरे रंगों में, मधुबनी कला में आड़े-तिरछे रेखांकन, कही त्रिनेत्र में कही वैशिष्ठय मालाओं चर्तुभुजी से लेकर अष्टभूजी तक, पेपर मिसी कला में श्री गणेश मिसी कला में कच्छपारूढ, महाराष्ट्र के वर्ली कला में सामाजिक और रोजमर्रा का चित्रण, थुंगा कला में, बारहभुजी, हरएक भुजाओं में आयुध यथा खेटक, खटवांग भस्मपात्र, सर्प, त्रिशुल, फरसा, खडग आदि, गौड कलाओं में जनगण सिंह श्याम, उनके परिवार, पद्मश्री और अहिल्या पुरस्कार से सम्मानित श्रीमती भूरी बाई के चित्रित, झाबुआ की पिथौरा कला, ग्वालियर की चितैरा आर्ट में वैवाहिक दृश्यों का समावेश है।

जी.पी. बिडला संग्रहालय में भगवान श्री गणेशजी के चल रहे समारोह के अवसर पर प्रदर्शनी के साथ चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। प्रतियोगिता में भोपाल स्थित समस्त फाईन आर्ट के अध्ययनरत तथा, एम. एल. बी महाविद्यालय, सरोजिनी नायडू महाविद्यालय, अटलबिहारी वाजपेयी कालेज, गीतांजलि महाविद्यालय, हमीदिया आर्ट कालेज बी.एस.एस. कालेज, और सरजाना फाईन आर्ट अकादमी के विद्यार्थियों ने भाग लिया, इनके द्वारा श्री गणेशजी के विभिन्न आकारों, विभिन्न वाहनों के अलग अलग मुद्राओं वाले आकारों को मूर्तरूप दिया।

प्रतियोगिता से.नि. प्रमुख प्रधान न्यायाधीश श्री योगेश गुप्ता, श्री उमेश गुप्ता जी के भरपूर सहयोग द्वारा संपादित हुआ। प्रतियोगिता के मुख्य निर्णायक गण मे डा. एल.एन. भावसार जी और श्री विनय सप्रे, डा. अंजली पाण्डेय और डा. विभा राठौर रहे। प्रतिभागियों मे दीपाली सोनी, कल्पित सोनी, सत्यम सोनी ने क्रमश: प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त किया इसी कड़ी मे सांत्वना पुरस्कार विजेता इशिता श्रीवास्तव और संजीवनी शुक्ला ने प्राप्त किया। नौ दिवसीय प्रदर्शनी को लोगो ने खूब सराहा और अपनी प्रतिक्रियायें भी लिखी।

कलाविद् नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की कृति 'मालवा के भित्तिचित्र' राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित

विश्व पर्यटन दिवस के अवसर पर नई दिल्ली के विज्ञान भवन में संपन्न हुए एक गरिमामय कार्यक्रम में कृति 'मालवा के भित्तिचित्र' को हिंदी में लिखी सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में ,पर्यटन के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रकाशन हेतु राष्ट्रीय पुरस्कार से महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय श्री जगदीप धनखड़ के मुख्य आतिथ्य में पुरस्कृत किया गया। केंद्र शासन के पर्यटन विभाग द्वारा नई दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित इस कार्यक्रम में मध्यप्रदेश शासन की ओर से प्रमुख सचिव संस्कृति एवं पर्यटन श्री शिवशेखर शुक्ला तथा श्री उपाध्याय द्वारा यह पुरस्कार केंद्रीय पर्यटन मंत्री श्री किशन रेड्डी व पर्यटन राज्य मंत्री श्री अजय भट्ट से ग्रहण किया गया। इस अवसर पर पर्यटन मंत्री सुश्री उषा ठाकुर तथा इंदौर के महापौर श्री पुष्यमित्र भार्गव भी उपस्थित थे। मालवा की इस अनमोल दृश्य विरासत के दस्तावेजीकरण का कार्य श्री उपाध्याय और श्रीमती अंजना उपाध्याय के द्वारा लगभग दो दशकों से किया जाता रहा है। घरों, किलों, मंदिरों और से लेकर समाधियों तक जो हर छोटे से छोटे और बड़े से बड़े स्थान पर मालवा में हैं, श्री उपाध्याय जी वहाँ पहुंच कर उनका अध्ययन करने, उनकी छवियां लेने,उनका इतिहास एकत्र करने और इस सब को संकलित करने का कार्य किया,इसे पुस्तक रूप दिया और मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग ने इसे मनोरम रूप में प्रकाशित किया।

श्री उपाध्याय जी का कहना है कि यह कार्य केवल हमारा कार्य नहीं है। इसके लिए वे सब उत्कृष्ट व्यक्तित्व उत्तरदायी हैं जिन्होंने छवियां लेने से लेकर स्थलों का इतिहास बताने, वहां तक पहुंचाने ,इस सब सामग्री को टंकिट तथा व्यवस्थित करने और भर दोपहर में छांह उपलब्ध कराने से लेकर रात में ठहर कर पलकों को विश्राम लेने के अवसर दिए। इन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना केवल औपचारिकता होगी क्योंकि यही व्यक्तित्व इस महान विरासत के सच्चे अनुरागी हैं। इन्हें मैं सादर नमन करता हूं। निस्संदेह इस महान दृश्य विरासत के संरक्षण का उत्तरदायित्व हम सबका है।मुझे लगता है इस अवसर ने हमें इसलिए अवश्य प्रेरित किया है कि हम इस गहन गंभीर धरा के इस मनोरम श्रृंगार की शोभा को अक्षुण्य बनाए रखने के लिए सदैव तत्पर बने रहें।

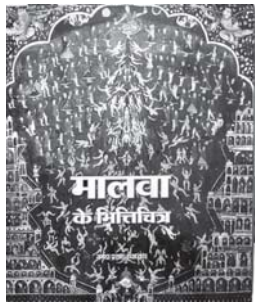

श्री सदाशिव कौतुक भाषा उन्नयन सम्मान समारोह सम्पन्न

इन्दौर संभाग पुस्तकालय संघ द्वारा पद्म श्री डॉ. एस. आर.रंगनाथन जी की 50 वी पुण्यतिथि पर आजीवन दिये जाने वाले श्री सदाशिव कौतुक भाषा उन्नयन सम्मान से सिक्का स्कूल के ग्रंथपाल श्री सचिन वर्मा को सम्मान पत्र, शाल, श्रीफल एवं 5001 रूपये की राशि प्रदान कर सम्मानित किया गया। इस भव्य आयोजन की अध्यक्षता, श्री कृष्ण कुमार अष्ठाना जी, मुख्य अतिथि श्री अनिल त्रिवेदी जी, पूर्व गृह मंत्री बाला बच्चन जी,एवं श्री राकेश शर्मा जी के सानिध्य मे सम्पन्न हुआ, अतिथियो ने हिन्दी भाषा के संवर्धन के लिए ऐसे अनूठे आयोजन की भूरि भूरि प्रसन्नता की। सरस्वती वंदना डॉ. शशि निगम ने एवं अतिथियो का परिचय श्री सदाशिव कौतुक ने दिया,एवं पुस्तकालय संघ के अध्यक्ष डॉ. जी.डी. अग्रवाल ने आयोजन मै प्रतिवर्ष दिये जाने वाले इस पुरस्कार की जानकारी दी। अतिथियो का स्वागत सर्व श्री सदाशिव कौतुक, रमेश कोठारी,अविनाश मिश्र, डॉ. जी.डी. अग्रवाल जी, राकेश कौतुक आदि ने किया, सम्मान पत्र का वाचन श्री हरेराम वाजपेई जी ने किया, इस अवसर पर श्री बाला बच्चन जी ने दो सम्मानो की घोषणा की। कार्यक्रम का संचालन श्री मती सुनयना शर्मा ने एवं आभार श्री अनिल ओझा ने व्यक्त किया। इस अवसर पर श्री कौतुक जी की पुस्तक दुध का दुध... का लोकार्पण भी हुआ।

दुष्यंत संग्रहालय में 'शतायु कामना पर्व' सम्पन्न

हमें जगदीश कौशल के व्यक्तित्व से प्रेरणा लेना चाहिए : अरविंद चतुर्वेदी

कला समय संस्था के अध्यक्ष पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट रसरंग द्वारा तथा काकली संगीत महाविद्यालय एवं संस्था की ओर से श्री कौशल जी को सम्मानित किया

भोपाल। बुजुर्ग हमारे लिए अनुभवों की जीवन्त किताब हैं. ये हमें समृद्ध परम्परा से परिचित करवाते हैं। कौशल जी वह महत्वपूर्ण किताब हैं, जिसके पन्नों पर हमारा इतिहास दर्ज है– ये उदगार थे वरिष्ठ पत्रकार और राज्यसभा टी वी के पूर्व कार्यकारी निदेशक राजेश बादल के। वे दुष्यंत कुमार संग्रहालय में जगदीश कौशल के शतायु कामना पर्व के मुख्य अतिथि थे। उन्होंने कहा कि दुष्यंत संग्रहालय इस आयोजन के बहाने दस्तावेजीकरण का काम कर रहा है। समारोह के अध्यक्ष अरविंद चतुर्वेदी ने कहा कि हमें जगदीश कौशल के व्यक्तित्व से प्रेरणा लेना चाहिए। विशेष अतिथि के रूप में उपस्थत घनश्याम सक्सेना ने जगदीश कौशल से जुड़े सस्मरण सुनाये। श्री अशोक मनवानी ने कौशल जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। संग्रहालय निदेशक राजुरकर राज ने 'शतायु कामना पर्व' की परम्परा का उल्लेख करते हुए समारोह का संचालन किया। समारोह के आरम्भ में डॉ क्षमा पाण्डेय, विपिन बिहारी वाजपेयी, सुरेश पटवा, संगीता राजुरकर, ऋषि श्रृंगारी ने अतिथियों का स्वागत किया। स्वागत वक्तव्य अध्यक्ष रामराव वामनकर ने दिया एवं संरक्षक अशोक निर्मल ने आभार व्यक्त किया। समारोह में डॉ देवेन्द्र दीपक, डॉ विजय बहादुर सिंह, रामवल्लभ आचार्य, लज्जाशंकर हरदेनिया, राजेन्द्र कोठारी, सुरेन्द्र द्विवेदी, आरिफ मिर्जा, के सी श्रीवास्तव, राम मेश्राम, डॉ जवाहर कर्नावट, गोविन्द चौरसिया, राजा दुबे, प्रकाश साकल्ले, संजीव गुप्त, भँवरलाल श्रीवास, सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट, डॉ नारायण व्यास, मनोज कुमार, जगदीश किंजल्क, रमेश भूमरकर राम मोहन चौकसे सहित अनेक साहित्यकार, पत्रकार और छायाकार उपस्थित थे।

लेखक, रंगकर्मी शशिकान्त लिमये द्वारा कृतियाँ भेंट

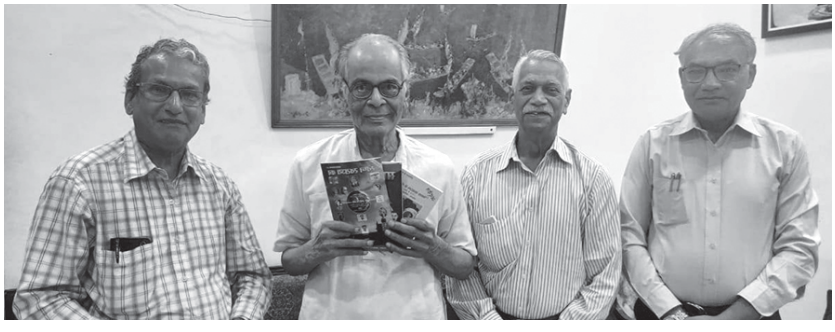

अरविन्द चतुर्वेदी जी एवं जगदीश कौशल जी को अपनी कृतियाँ भेंट करते हुए शशिकान्त लिमये

सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन शोध पीठ भोपाल द्वारा सम्मानों की घोषणा

'सप्तवर्णी कला-साहित्य सृजन-शोध पीठ ,भोपाल' द्वारा आयोजित 'राजाराम रूपध्वनि कलाप्रदर्शनी' एवं पुरस्कार हेतु प्राप्त लगभग 45 कृतियों में से चयनित 39 कृतियों में से पुरस्कारों के चयन हेतु उपस्थित सम्माननीय निर्णायक-समिति द्वारा वरिष्ठ एवं कनिष्ठ श्रेणी में प्रत्येक श्रेष्ठ कृति के साथ दो-दो उकृष्टता प्रमाण पत्र योग्य कृतियों का भी चयन किया गया।

इस प्रकार इस प्रथम प्रदर्शनी-पुरस्कार आयोजन में कुल छः कलाकारों की कृतियों को पुरस्कार हेतु चुना गया है। जिनके नाम हैं--वरिष्ठ श्रेणी में श्रेष्ठता पुरस्कार के लिए (रू.35 हजार मात्र)सुश्री शोभा घारे(भोपाल)का चयन हुआ है तथा कनिष्ठ श्रेणी में श्रेष्ठता पुरस्कार के लिए (रू.30हजार मात्र) सुश्री शुभ्रा श्रीवास्तव (भोपाल) की कृति का चयन हुआ है। वरिष्ठ एवं कनिष्ठ दोनों श्रेणियों में उत्कृष्टता पुरस्कार (रू.पाँच हजार मात्र प्रत्येक) के लिए सुश्री स्वाति जैन(भोपाल),सुश्री वर्षा रघुवंशी (बुरहानपुर), श्री शिवम नामदेव(भोपाल) तथा श्री विवेक पोले (जबलपुर) की कृतियों का चयन हुआ है। सम्मानित चयन समिति में उपस्थित थे वरिष्ठ कलाकार श्री देवीलाल पाटीदार, वरिष्ठ सिरेमिक कलाकार सुश्री निर्मला शर्मा, दूरदर्शन के वरिष्ठ अधिकारी श्री अमित त्यागी,कला-प्रेमी वरिष्ठ डॉक्टर श्री ललित श्रीवास्तव तथा वरिष्ठ

साहित्यकार डॉ.बिनय षडंगी राजाराम।

इस अवसर पर फरवरी 2023 में आयोजित एकदिवसीय कला-शिविर की एक श्रेष्ठ शिविरार्थी के रूप में सुश्री गायत्री गौड़ को सम्मानित करने का निर्णय लिया गया है,जिसमें भी सम्मान राशी के रूप में पाँच हजार रू.दिये जाने का निर्णय हुआ है। आने वाले 2023 के फरवरी माह में प्रो.राजाराम के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में आयोजित संस्था के भव्य वार्षिक-समारोह में समस्त पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान किए जाएँगे तथा उसी अवसर पर 'राजाराम रूपध्वनि कला-दीर्घा' में समस्त कलाकृतियों की प्रदर्शनी का आयोजन किया जाएगा जो एक माह तक प्रदर्शन हेतु जारी रहेगा।

रपट : डॉ. बिनय षडंगी राजाराम

डॉ. महेन्द्र भानावत को लोकभूषण सम्मान

उदयपुर। उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कारों में सन् 2021 का 'लोकभूषण सम्मान' प्रसिद्ध लोककलाविद डॉ. महेन्द्र भानावत को प्रदान किया जायेगा। संस्थान के निदेशक पवन कुमार के अनुसार पुरस्कार स्वरूप डॉ. भानावत को शॉल, स्मृतिचिन्ह के साथ ढाई लाख रूपये की राशि दी जायगी।

डॉ. भानावत ने पन्द्रह वर्ष की उम्र से ही अपने गांव कानोड़ से कविता के माध्यम से लेखन प्रारम्भ किया। लोकसाहित्य-संस्कृति-कला के क्षेत्र में साधनापूर्वक लेखन करते अब तक उनकी एक-सौ-एक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उल्लेखनीय है कि हिन्दी संस्थान से ही पूर्व में डॉ. भानावत की लिखी अजूबा राजस्थान,

मेंहदी राचणी तथा राजस्थान के थापे नामक पुस्तकें पं. रामनरेश त्रिपाठी नामक कृति सम्मान से पुरस्कृत हो चुकी हैं। संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष ही हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं पर कई लेखकों को पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। डॉ. भानावत ऐसे विद्वान हैं जिन्हें भारतीय परिवेश में लोकजीवन, जनजातीय परिवेश तथा भारतीय लोकधर्मिता से ओतप्रोत साहित्य सृजन के लिए 'लोकभूषण' से नवाजा जायगा।

परंपरागत ग़ज़ल के लिए हिंदी ग़ज़ल एक वरदान है!: सिद्धेश्वर

हिंदी ग़ज़ल आमजन के हृदय को छू लेने की क्षमता रखती है!: डॉ. सविता सिंह नेपाली

''ग़ज़ल यानी परंपरागत गजल के लिए समकालीन हिंदी ग़ज़ल एक वरदान है। और यह वरदान दिया है हिंदी गजल को लोकप्रिय बनाने वाले कवि दुष्यंत कुमार ने। यह सर्वविदित है कि दुष्यंत कुमार के पहले हिंदी ग़ज़ल कि वह तल्खीपानी और विषयगत नवीनता देखने को शायद ही मिली हो। हालांकि गोपालदास नीरज की गीतिका को ग़ज़ल की लोकप्रियता का एक अलग पैमाना माना जा सकता है। किन्तु विशुद्ध हिंदी ग़ज़ल की जो बानगी दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में देखने को मिलती है, वह प्राय: हिंदी ग़ज़लों के इतिहास में दुर्लभ है।''

भारतीय युवा साहित्यकार परिषद के तत्वाधान में, फेसबुक के अवसर साहित्यधर्मी पत्रिका के पेज पर, '' हेलो फेसबुक कवि सम्मेलन'' के तहत सावन मौसम के अवसर पर एक रंगीन गीत ग़ज़ल का अखिल भारतीय आयोजन का संचालन करते हुए संस्था के अध्यक्ष सिद्धेश्वर ने उपरोक्त उद्गार व्यक्त किया।

मुख्य अतिथि डॉ. सविता सिंह नेपाली ने कहा कि -समकालीन कविता की बोझिलता बहुत हद तक हिंदी ग़ज़ल ने दूर कर दिया है। हिंदी ग़ज़ल आम जन की भाषा में अभिव्यक्त होती है, इसलिए वह कविता की सबसे सशक्त विधा बन गई है। वह सहज सरल तो है ही आमजन के हृदय को छू लेने की क्षमता भी रखती है। साहित्य अपने विकास की रास्ता स्वयं ढूंढ लेती है। पत्र -पत्रिका कम पड़ने लगी, तब सोशल मीडिया ने इसे विस्तार दिया है, और वैश्विक फलक पर साहित्य का मूल्यांकन आज भी हो रहा है!

अपनी अध्यक्षीय भूमिका में डॉ. शरद नारायण खरे (मध्यप्रदेश) ने कहा कि- उर्दू ग़ज़ल बेहद कठिन होने से आम आदमी की समझ के बाहर होती है। समझ में न आ पाने वाले जटिल उर्दू शब्दों से परिपूर्ण उर्दू ग़ज़ल काफी दुरूह होती है। इसी लिए हिंदी ग़ज़ल का उद्भव हुआ।

मुख्य वक्ता ऋचा वर्मा ने कहा कि- सपाटबयानी कविताएं कभी-कभी इतनी बोझिल हो जाती हैं कि पाठकों के समझ नहीं आतीं। ना इनमें भाव होते हैं ना गेयता। वहीं ग़ज़ल अपने अंदाज-ए-बयां के चलते लोगों में खासकर युवा पीढ़ी में काफी लोकप्रिय है।

इस अखिल भारतीय हेलो फेसबुक कवि सम्मेलन में, देशभर के नए पुराने कवियों की भागीदारी रही! डॉ. शरद नारायण खरे (म.प्र.) ने-गीत गा रहा माह सुसावन, आसमान सुशोभित है बहुत दिनों के बाद धरा खुश,तबीयत आनंदित है!''/ अशोक अंजुम (अलीगढ़) ने मन जिस जगह लगा मैं उधर देर तक रहा, मुझ पर मोहब्बतों का असर देर तक रहा!/ विजयानंद विजय (बोधगया) ने-बदरा बरसे बिजली चमके, उमड़ घुमड़ कर आया सावन! तृण तृण पर नवजीवन छाया कोटि-कोटि हर्षाया सावन/शैलजा सिंह (गाजियाबाद) ने-वो जब बोलता है बहुत तौलता है, कसम से मेरा यार कम बोलता है!/ रशीद गौरी (राज.)ने-रह गया है बस वफाओं का नाम आजकल!, एक दिखावा है दुनिया आम आजकल!/विज्ञान व्रत ने-सावन में सेहरा दिखे, ऐसा तेरा रूप!''/ अपूर्व कुमार (हाजीपुर) ने-आषाढ़ तो तरसा गया, है सावन तू मत तरसाना, वसुधा के सूखे कपोलों पे, रस की फुहार बिखरा जाना।''

मधुरेश नारायण ने-हरी चुनरिया ओढ़ के धरती सावन में इतराए!'' / सिद्धेश्वर ने-उजड़ा हुआ गांव है गांव में रोने वाला भी है!, आंसू है या बरसात का पानी यह समझने वाला कोई नहीं!/मुरारी मधुकर ने-होती थी गुलजार गांव की गलियां। सावन का सनपुरिया

लाने वालों से खिल उठते थे, सभी बाग बगीचे।/सच्चिदानंद किरण (भागलपुर)ने–सावन बरसे रिमझिम बूंदाबांदी, प्रियतम मन हरसाए झम झमा झम!!

प्रियंका श्रीवास्तव शुभ्र ने–विरहिनी सा उदास हुआ सावन, जल रहा धरती का तन मन!''/ डॉ शिप्रा मिश्रा ने – क्या–क्या निर्मल करो विमा लोग मुंह के कुछ बंधन में फंसे हैं ऐसे!/ डॉ संतोष मालवीय ने – कोरोना के भर्ती पर गजब ढाया कहर है, गांव की गलियां चुप चुप सारा शहर है।/ रेखा भारती मिश्रा ने–इन फिजाओं में है खुशबू, चांद भी आया उतर!/ संजीव प्रभाकर (गुजरात) ने–बड़े दिन बाद आए हो बताओ हाल कैसा है?, बदसला साल को छोड़ो बताओ यह साल कैसा है?/ डॉ. अलका वर्मा ने कजरी गाओ सावन आया, जन–जन का मन हर्षाया!/ कालजयी घनश्याम (नई दिल्ली) ने–सजन अगर साथ हो तो फूल बरसाता है यह सावन फूल बरसाता।/ नीलम नारंग ने– ''सावन के महीने में आया तीज का त्यौहार!''/ वंदना सहाय ने–कल ही बरसे हैं बादल और अभी चुप है, लगता है मन उनका अभी भी है भरा हुआ, वापस आएंगे फिर!

श्रीकांत (झांसी) ने–दीवारों के कान सुने थे दरवाजों के कान हो गए, हिस्ट्री खुली थाने में नेताजी महान हो गए!''/मीना कुमारी परिहार सावन में प्यार करूंगी, जी भरकर दीदार करूंगी/हमीद कानपुरी ने –''खास का इंतजार करते रहो कुछ जमाने से प्यार करते रहो!''/ रामनारायण यादव (सुपौल) ने–सावन की घटा घनघोर रिमझिम बरसा चहु ओर सखी वन में नाचे मोर!'' डॉ. सुनीता सिंह सुधा (वाराणसी) ने–'' उमड़ घुमड़ घिर सावन का नभसे जल बरसाए?/ राज प्रिया रानी ने–हरि बोल ले आई देखो सावन की हरियाली, टपके घर की छतिया और आंगन पानी पानी!'' जैसी उम्दा गीत गजलों का पाठ किया! इनके अतिरिक्त मीनाक्षी सिंह, केवल कृष्ण पाठक, अशोक कुमार, कीर्ति काले, पुष्प रंजन, वंदना सहाय, नीलम श्रीवास्तव,विजय कुमार मौर्य, नंद कुमार मिश्रा, हरि नारायण हरि, चाहत शर्मा, अंजना पचौरी, पुष्पा शर्मा, नीरज सिंह, संतोष मालवीय,दुर्गेश मोहन, डॉ सुनील कुमार उपाध्याय आदि की भी दमदार उपस्थिति रही।

रपट: ऋचा वर्मा

मानसिक ही नहीं शारीरिक आरोग्य भी देती है ये पदयात्राएं :ओम द्विवेदी

इंदौर। हमारी पदयात्राओं संबंधी पुरातन मान्यताएं जहां हमें अपने देश अपने परिवेश को जानने समझने और सामाजिक एकरूपता को पाने का जरिया है वहीं ये हमें मानसिक के साथ शारीरिक आरोग्य भी देती है।

ये विचार अभी हाल ही में हिमालय के चारों धामों की साहसिक पदयात्रा कर लौटे वरिष्ठ पत्रकार, रंगकर्मी व रचनाधर्मी श्री ओम द्विवेदी ने अपने उद्बोधन में व्यक्त किये। वे आपले वाचनालय द्वारा उनके सम्मान में आयोजित विशिष्ट संस्मरणात्मक कार्यक्रम में बोल रहे थे। उन्होंने तीन हजार छह सौ किलोमीटर की अपनी पूर्व नर्मदा परिक्रमा की पदयात्रा के रोचक संस्मरण से अपने व्यक्तव्य की भावभूमि तैयार करते हुए इसे इस साहसिक व रोचक पदयात्रा की पूर्व तैयारी निरूपित किया। उन्होंने कहा कि इस यात्रा में मिले परिक्रमावासियों से हुई चर्चाओं में उत्तराखंड, हिमालय की पदयात्राओं की महत्ता सुन सुन इस यात्रा का मानस बना। हिमालय के सर्वज्ञात चार धामों के अलावा भी केदार व बद्री के अल्पज्ञात अनेक दुर्गम महत्व के देवस्थान है जहां पहुंचकर मुझे अलौकिक अनुभूति का साक्षात्कार हुआ। तीन महीने तीन दिन की इस दुर्गम साहसिक यात्रा में पद पद पर आई चुनौतियों और उस पर मिली विजय आपकी ईश्वरीय आस्थाओं को न सिर्फ दृढ़ करती है। वरन प्रकृति की सदाशयता व मातृवत खेह आपको नतमस्तक करता । इन यात्राओं में यत्र तत्र मिले सभी वर्गों का स्नेह भी इस विपरीत कपटी समय में मानवता के प्रति आपकी आस्थाओं को दृढ़ करता है। अपनी रोचक व धाराप्रवाह शैली में ओमजी द्वारा दिये गए इस संस्मरणात्मक व्याख्यान ने श्रोताओं को न सिर्फ भावविभोर किया वरन वे भी इस पदयात्रा के हमराही होने के एहसास से सराबोर हुए। कार्यक्रम के शुरवात में सर्वश्री सतीश यवतिकर, दीपक देशपांडे, जयंत गुप्ता, सदाशिव कौतुक, प्रभु त्रिवेदी, अरुणिमा राजुरकर, दीपक शिरालकर, अरुण मौर्य ने पुष्प–कृति भेंट कर आदर भाव व्यक्त किया। संस्था की ओर से संदीप राशिनकर ने शाल, पुष्प हार व स्मृति चिन्हों से द्विवेदी युगल का सम्मान किया।

रपट – संदीप राशिनकर

महात्मा गांधी सम्मान से सम्मानित होंगे नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

पत्रकारिता के ज्ञानतीर्थ कहे जाने वाले भोपाल स्थित माधवराव सप्रे संग्रहालय के द्वारा वर्ष 2022 का महात्मा गांधी सम्मान सुविख्यात ललित निबंधकार, संस्कृतिविद व कलाविद श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय को दिए जाने की घोषणा सप्रे संग्रहालय के संस्थापक श्री विजयदत्त श्रीधर ने महात्मा गांधी जयंती के अवसर पर की।

संग्रहालय की विज्ञप्ति के अनुसार यह सम्मान महात्मा गांधी के चंपारन सत्याग्रह की शताब्दी के अवसर पर स्थापित किया गया है तथा किसी विषय क्षेत्र में सुदीर्ध साधना और यशस्वी अवदान के लिए यह सम्मान सार्वजनिक स्वीकृति और कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के लिए प्रदान किया जाता है।इस परिप्रेक्ष्य में यह सम्मान श्री उपाध्याय को उनके उत्कृष्ट लेखन तथा बहुविध सांस्कृतिक साधना के माध्यम से समाज को प्रेरित करने के लिए प्रदान किया गया है।

इसके पूर्व पिछले वर्षों में सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रोफेसर रमेशचंद्र शाह, श्री शंभुदयाल गुरु, महात्मा गांधी विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रोफेसर गिरीश्वर मिश्र, सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान तथा संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली के कुलपति डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी और प्रख्यात ध्रुवपद गायक गुंदेचा बंधुओं को प्रदान किया गया है।

उल्लेखनीय है कि श्री उपाध्याय को हाल ही में उनकी कृति 'मालवा के भित्तिचित्र' के लिए नई दिल्ली में महामहिम उपराष्ट्रपति के मुख्य आतिथ्य में केंद्रीय पर्यटन मंत्री श्री किशन रेड्डी द्वारा सम्मानित किया गया है।वे पूर्व में भी राष्ट्रीय स्तर के अनेक पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित हो चुके हैं।

मध्यप्रदेश के गुमनाम क्रांतिकारी कृति का विमोचन

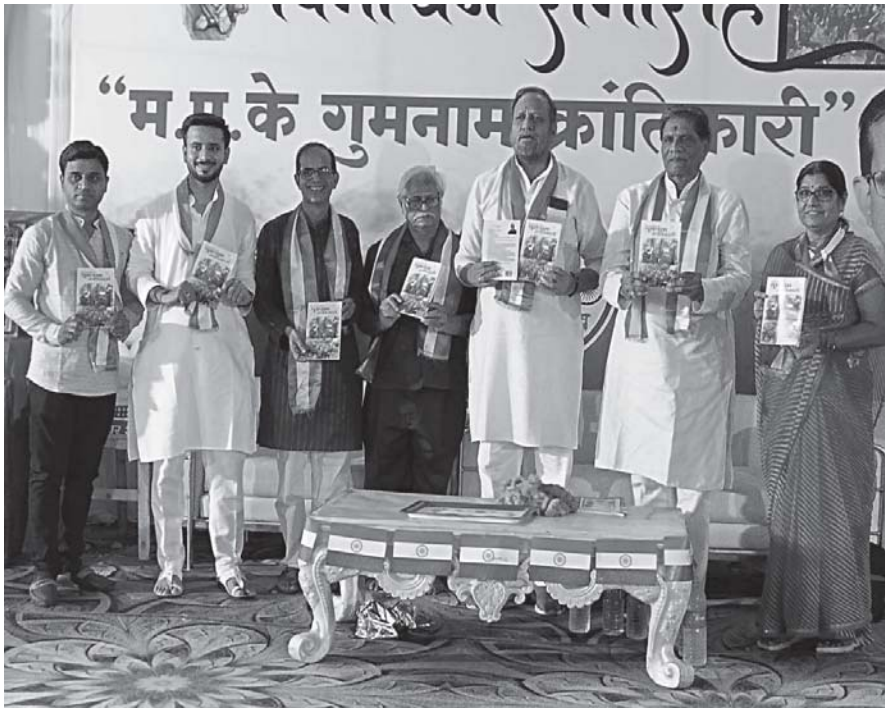

आजादी के नायको का स्तर हमें गौरव, गरिमा और शौर्य प्रदान करता है। किंतु आजादी के समय में बलिदान होने वाले कई शहीद गुमनामी के अंधेरे में है, जिन्हें हम जानते भी नहीं है। इसी दिशा में राजेंद्र श्रोत्रिय ने म.प्र. के गुमनाम क्रांतिकारीयों पर कविता लिखकर अपनी कृति 'मध्यप्रदेश के गुमनाम क्रांतिकारी' का प्रकाशन किया है। यह विचार राष्ट्रीय कवि व साहित्यकार देव कृष्ण व्यास ने रखे। विधायक के आतिथ्य में कृति का विमोचन हुआ। इतिहासकार कैलाशचंद्र घनश्याम पांडेय ने कहा स्वंतत्रता के बाद स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को जो मिलना था वो नहीं मिल पाया।

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

सुविख्यात ठुमरी गायिका सविता देवी

जन्म : 7 अप्रैल 1941 **निधन : 20 दिसम्बर 2019**

बनारस घराने की सुविख्यात ठुमरी गायिका पद्म श्री सिध्देश्वरी देवी की पुत्री सविता देवी को ठुमरी गायन की कला विरासत में प्राप्त हुई थी. बनारस अंग की ठुमरी, दादरा, पूर्वी होली, चैती तथा कजरी गाने की कला उन्हें बचपन से ही अपनी माँ से प्राप्त हुई, बनारस विश्वविद्यालय से संगीत में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्होंने सितार वादन की शिक्षा प्रारम्भ की विश्व विख्यात सितार वादक भारत रत्न पंडित रविशंकर जी की वह गंडाबंध शार्गिद थी उन्होंने देश–विदेश के अपके प्रतिष्ठित संगीत समारोहों में सितारवादन और अपनी सुन्दर गायकी व मधुर आवाज़ में ठहरी गायन के कार्यक्रम प्रस्तुत किए. आकाशवाणी और दूरदर्शन पर नियमितरूप से प्रदर्शन होते रहें।

उन्होंने सिद्धेश्वरी एकैडमी ऑफ इंडियन म्यूजिक नामक संस्थान की स्थापना की और ''माँ सिद्धेश्वरी देवी'' के नाम से एक पुस्तक, भी लिखी है।

सितार वादन करती हुई सवितादेवी की युवावस्था–का यह दुर्लभ फोटो वर्ष 1967 का है. इसे क्लिक किया है सुप्रसिद्ध वरिष्ठ छायाकार श्री जगदीश कौशल, ने. विन्ध्य संगीत समाज रीवा द्वारा आयोजित अखिल भारती संगीत समारोह में वह अपने पति सुविख्यात तबलावादक पद्म विभूषण पंडित किशन महाराज के साथ रीवा आई थी।

संस्मरण

ठुमरी गायन की कला तो हमें विरासत में मिली है : सविता देवी

जगदीश कौशल

संस्मरण आज से लगभग 55 वर्ष पुराना है वर्ष 1967 में विन्ध्य संगीत समाज रीवा द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत समारोह में सविता देवी जी अपने पति सुविख्यात तबला वादक पंडित किशन महाराज के साथ रीवा आई थीं, मैं इस संस्था में प्रचार सचिव था. सविता जी इस समारोह में सितार वादन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया था– दूसरे दिन उनसे साक्षात्कार करते समय मैंने उनसे पूँछा था कि आप तो सुप्रसिद्ध ठुमरी गायिका आदरणीय सिद्धेश्वरी देवी की पुत्री हैं आपको तो ठुमरी गायन का कार्यक्रम प्रस्तुत करना चाहिए था – इसके उत्तर में उन्होंने कहा था कि कौशल जी ठुमरी गायन की कला तो हमारी पीढ़ी दर पीढ़ी की है, जो हमें विरासत में मिली है. आपको मैं यह बताना चाहती हूँ कि मेरी माँ सिद्धेश्वरी की परदादी का नाम मैनादेवी था– हमारी नानी श्यामा देवी तीन बहन और एक भाई थे जिनमें सबसे बड़ी श्रीमती राजेश्वरी देवी उनसे छोटी श्रीमती कुन्ती देवी और भाई अमर नाथ तथा सबसे छोटी श्यामा देवी थीं– माँ सिद्धेश्वरी देवी जब केवल ढेड़ वर्ष की थी तब उनकी माँ, यानी मेरी नानी जी की मृत्यु हो गई थी और जब वह पाँच वर्ष की हुई तो पिता श्री श्यामू मिश्र का भी देहान्त हो गया मेरी माँ का लालन–पालन उनकी गायिका मौसी राजेश्वरी देवी ने किया. माँ की संगीत में रूचि को देखकर उनके मामा जी ने उन्हें पं. सिया जी महाराज के पास भेजना शुरू कर दिया–

मेरी, माँ ने अपने गुरु और गुरुमाँ की खूब सेवा की उनकी सेवा और संगीत में रूचि को देख–परख कर पं. सियाजी महाराज ने भी उन्हें अपनी औलाद समझकर माँ सिद्धेश्वरी को संगीत का ज्ञान

दिया इस प्रकार गुरु–शिष्य परम्परा हमारे परिवार में पीढ़ी–दर पीढ़ी चली आ रही है। माँ सिद्धेश्वरी देवी की दो पुत्रियाँ हैं एक मैं सविता देवी और दूसरी मुझसे बड़ी बहन शान्ता देवी.. माँ ने हम दोनों बहनों को संगीत की अच्छी शिक्षा दिलाई अच्छे गुरूओं से भी सिखलाया. संगीत के अलावा उन्होंने दोनों पुत्रियों को विश्वविद्यालय तक की शिक्षा भी दिलाई।

जहाँ तक सितरावादन का प्रश्न है तो इसके बारे में. मैं यह कहना चाहती हूँ कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से संगीत में एम. ए. की उपाधि प्राप्त करने के बाद मेरी रूचि सितारवादन में होने के कारण मैं, इस क्षेत्र में आई विश्वविख्यात सितारवादक पंडित रविशंकर जी की मैं गंडाबंध शिष्या हूँ. पंडित किशन महाराज से शादी के पहले मैं कानपुर के एक महाविद्यालय में सितार की शिक्षिका के पद पर कार्य करती थी– संगीत के वाद्ययंत्रो में सितार मेरा सबसे प्रिय वाद्ययंत्र है।

– ई, 3/ 320 अरेरा कालोनी, भोपाल
मो. 9425393429

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता एवं समसामयिक इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

– संपादक

पत्रिका के बहाने

आजादी का महत्व और मिली कैसे जानना है जरूरी

आजादी का अमृत महोत्सव देश मना रहा है । तिरंगे की आन बान और शान के साथ देशवासियों ख़ासकर युवा पीढ़ी को यह जानना बेहद जरूरी है कि भारत को स्वतंत्रता कैसे मिली ?

तत्कालीन समय कालखंड में कितनी यातनाओं और त्याग से , महिलाओं और पुरुषों के बलिदानों के बाद स्वतंत्रता की शुभ घड़ी 1947 में आई । देश भर का योगदान आजादी आंदोलन में रहा साथ ही हमारे मध्यप्रदेश का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान शामिल था । इस गौरवगाथा को प्रदेश की कला, संस्कृति, साहित्य और समसामयिक विषयों पर केंद्रित विशिष्ट पत्रिका ''कला समय'' द्वारा विशेषांक माध्यम से बखूबी प्रस्तुत किया है ।

छपाई-सफाई के साथ प्रकाशित गौरवगाथा विशेषांक संपादन पुराविद् एवं इतिहासवेत्ता श्री कैलाशचंद्र घनश्याम पांडेय जी द्वारा हुआ। यह अंक संग्रहणीय होकर प्रदेश भर की समस्त शैक्षणिक , साहित्यिक संस्थानों और वाचनालयों के लिए उपयोगी और संदर्भों के सर्वथा उपयुक्त है। लगभग 53-54 पृष्ठों में मध्यप्रदेश के दस संभागों के 52 जिलों के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के त्याग और बलिदान के साथ तात्कालिक विपरीत और कठिन परिस्थितियों में संघर्ष का सांकेतिक उल्लेख है। सन 1857 से उठी आजादी की चिंगारी सन् 1947 तक आते-आते मशाल बनी और अनेकों देशवासियों ने अपनी आहुति दी ।

यह तथ्य भी रेखांकित होता है कि देश की आजादी के लिए तत्कालीन समय में जात-पात, ऊंच- नीच, धर्म-वर्ग, महिला-पुरूष, युवा-वृद्ध, किसान-व्यापारी कोई वर्ग कोई धर्म अछूता नहीं रहा। देश प्रेम और राष्ट्र की स्वतंत्रता घनश्याम ही प्रथम ध्येय रहा। संपादक श्री पांडेय जो स्वयं प्रमाणित हस्ताक्षर हैं, सारगर्भित शब्दों में

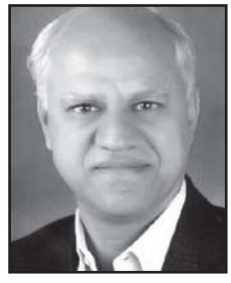

प्रदेश के मालवा-निमाड़, महाकौशल, बुंदेलखंड, बस्तर, आदिवासी अंचलों समेत सभी क्षेत्रों के योगदान और महत्व का उल्लेख किया है। कला समय के इस संग्रह से हमें पता चलता है कि सन् 1857 में भोपाल रियासत के नवाब फाजिल मोहम्मद खान और भाई आमिल मोहम्मद खान ने ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आजादी की अगुवाई की और शहादत दी। इसी तरह राजगढ़ रियासत में आज़ादी के दीवानों के दल प्रजामण्डल की स्थापना सैय्यद हामिद अली ने की । सभी वर्गों और धर्मो को मानने वाले स्वतंत्रता आंदोलन में एकसाथ थे। इंदौर, उज्जैन, नरसिंहगढ़, झाबुआ, नीमच, मंदसौर, भोपाल, खिलचीपुर, शाजापुर, देवास, शहडोल, ओरछा, विंध्याचल, रतलाम, दमोह, रीवा, सोहागपुर, पनागर-जबलपुर, मंडला, ग्वालियर छिंदवाड़ा, बुरहानपुर ही नहीं समस्त तहसीलों, ठेठ ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्वतंत्र भारत की आवाज़ उठी । संघर्ष किया, कष्ट सहे यह उजागर हुआ है ।

नीमच और महू ब्रिटिश राज के मिलिट्री सेंटर रहे, यहां भी मंदसौर, नीमच और इंदौर, देवास में आजाद भारत की ज्योति तीव्रता से जली। रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, राव बख्तावरसिंह, भीमा नायक, टंट्या भील, शंकरदयाल शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, कन्हैयालाल खादीवाला, सैय्यद हामिद अली, मोहिनीदेवी श्रीवास्तव, सुभद्राकुमारी चौहान, केसरबाई चोरड़िया , धनेश्वरी चौबे , तारादेवी मिश्रा , चन्द्रशेखर आजाद , सीताराम जाजू , भरतराम पाटीदार , नथमल चोरड़िया, रामनारायन त्रिवेदी, शंकरलाल कटलाना, नंदलाल दलाल, केशव प्रकाश

विद्यार्थी, श्यामसुख गर्ग, चांदमल मारू, लालचंद चोरडिया, बद्रीदत्त भट्ट, रामलाल पोखरना आदि चंद नाम हैं त्याग और समर्पण को उल्लेखित किया गया है

अनेक अज्ञात देशवासियों ने देश की स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लिया और प्राणों की आहुतियां दी हैं। यह रोमांचक भी है और ज्ञानवर्धक भी। विशेषांक में उल्लेखित विवरण के अनुसार अविभाजित मंदसौर जिले के सन् 1999 में 67 स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के नाम हैं जिनमें केवल नीमच क्षेत्र के ही 42 सेनानी शामिल हैं। अतिथि संपादन में श्री पांडेय ने तथ्यात्मक विवरण मय प्रामाणिक संदर्भों के साथ इस अंक में समाहित किये है यह महत्वपूर्ण है। इसके आधार पर अन्य संदर्भ और संग्रह की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

कला समय अंक में श्री प्रकाश मानव नीमच द्वारा भी मालवा खण्ड में दुर्लभ जानकारी प्रस्तुत की है । विशेषांक के अतिथि संपादक श्री पांडेय ने संकलन और प्रकाशन की कठिनाई और सहयोग का भी बेबाकी से चित्रण किया जो दर्शाता है कि आजादी के दीवाने प्राणोत्सर्ग कर विदा हुए पर आज प्राप्त स्वतंत्रता को कथित वर्ग अपने हित लाभ के लिए भुना रहा है ।

यूं तो कला समय विगत 25 वर्षों से प्रकाशित है, संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास, हरीश श्रीवास, चेतना श्रीवास, राहुल श्रीवास के संयुक्त प्रयास से विभिन्न विधाओं के श्रेष्ठी और सुधिजन के मार्गदर्शन में निरंतर प्रवाहमान हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में मध्यप्रदेश की गौरवगाथा विशेषांक इसका प्रतिबिंब है। एकसौ से अधिक पृष्ठों के इस संग्रहणीय विशेषांक में सर्वश्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, जगदीश कौशल, श्रीकांत साकल्ले, पद्मश्री उमाकांत गुंदेचा, अखिलेश, डॉ अद्वैतवादिनी कौल आदि की भिन्न रंगों की सजी उत्कृष्ट रचनाओं का समावेश भी है। पद्मविभूषण अलंकृत अन्तराष्ट्रीय संगीतकार संतूर वादक पंडित शिवकुमार शर्मा की स्मृतियों को शामिल किया है। विशिष्टता यह है कि कलाधर्मी संदीप राशिनकर के रेखांकन सार्थकता सिद्ध करते हैं। मुखपृष्ठ पर मध्यप्रदेश के लगभग 78 सेनानियों के चित्र अंकित हैं, जो प्रेरित करते हैं। कला समय संपादक एवं प्रकाशकों के प्रयास स्तुत्य हैं जब कला, संस्कृति साहित्य के प्रति रुझान में और विशेष कर युवा पीढ़ी में पढ़ने के प्रति कमी देखी जारही है तब भी लोकोपयोगी संग्रह और साहित्य प्रकाशन निरन्तरता से जारी है ।एतदर्थ बहुत बधाई के हकदार हैं।

गौरवगाथा विशेषांक के लिए अतिथि संपादक श्री पांडेय एवं प्रधान संपादक श्री श्रीवास साधुवाद के पात्र हैं ।

कवि शायर ताज भोपाली के शब्दों के साथ जुड़ें –

शहादत मकसद से मरने का नाम है,
मक़सद नाहो तो भीड़ में मरना हराम है।

आज़ादी के मतवालों को नमन !

– **डॉ. घनश्याम बटवाल,** मंदसौर (म.प्र.)

समय की शिला पर कला का कमनीय रेखांकन

भोपाल से प्रकाशित 'कला समय' का अप्रैल–मई 2022 का अंक आजादी के अमृत महोत्सव पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित है। इसमें स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान सन् 1857 से लेकर 1947, प्रथम स्वातंत्र्य समर से लेकर देश की स्वाधीनता तक मध्यप्रदेश के दस सम्भागों के बावन जिलों के स्वतंत्रता सेनानियों का जो योगदान रहा, उसका गौरवशाली विवरण, विवेचन और विश्लेषण दिया गया है। इस दृष्टि से सम्पादक भँवरलाल श्रीवास ने इस विशेषांक की ऐतिहासिक, सामाजिक तथा देश–सेवा के लिए प्राण–प्रण से सर्वस्व बलिदान करने वाले वीरवर सेनानियों की संघर्षमय जीवनगाथा से रू–ब–रू कराने का सांगोपांग दस्तावेजीकरण देकर शिलपट्टी को जैसे सिरोभाव से जड़ दिया है।

इस अंक के अतिथि सम्पादक कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय ने बड़े परिश्रम, खोजक दृष्टि तथा अनुभवी पांखों से अनेक मित्रों का सहयोग लेकर इसे स्थायी महत्त्व का बना दिया। अपने सम्पादकीय में उनका बड़ी आत्मीयता से उल्लेख किया है। अपने सम्पादकीय कथ्य में उनका यह कथन पठनीय है– ''कला समय का यह अंक मध्यप्रदेश की उन हुतात्माओं के नाम है जिन्होंने ब्रिटिश सरकार के कारिन्दों के जुल्म सहे। अपने परिवार का परित्याग किया। समाज की उपेक्षा सही और वक्त आने पर अपने प्राणों का बलिदान भी किया। प्रस्तुत अंक अब तक प्रकाशित रपटों, ग्रन्थों से अलग सबसे सरल सहज है। इसमें अकादमिकता खोजने की अपेक्षा क्रमबद्धता देखें। न तो यह टेबल वर्क है और न ही पूर्व प्रकाशित सामग्रियों की फोटोकॉपी।''

– डॉ. महेन्द्र भानावत
352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास,
उदयपुर–313001, मो. 9351609040

स्वतंत्रता संग्राम की सशक्त गौरवगाथा

भारत की स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ पर सारे देश में 'अमृत महोत्सव' की धुम रही। लोग आल्हादित क्यों न हो ? आखिर इस लम्बी अवधि में अंग्रेजों द्वारा लूटा गया असहाय, गरीब, आर्थिक रूप से पिछड़ गये अपने देश को एक समृद्ध, उन्नतिशील, शक्तिशाली और अग्रिम देशों की पंक्ति में स्वाभिमान से माथा ऊंचा किये खड़े रहने का सौभाग्य प्राप्त किया है। इसका सारा श्रम, उन अनगिनत स्वतंत्रता सेनानियों को है जिन्होंने गुलामी की बेड़ियों को काटने में अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। साथ ही उन पथ-प्रदर्शकों को भी जिन्होंने भारत को प्रगति पथ पर अब तक आगे बढ़ाया॥ सन् 1857 से 1947 तक का लम्बा संघर्ष काल, देश के उन शहीदों, बलिदानियों, जेल के सीखनों में केंद रहे उन असंख्य बोरों के चरणों में नमन और स्मरण करने का है। स्वतंत्रता सेनानियों ने जो कुर्बानिया दी, वह इतिहास में हमेशा स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेंगी। उस अविस्मरणीय स्वतंत्रता संग्राम में वर्तमान मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की जनता ने महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय भूमिका निभायी है।

आज़ादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से देश की स्वाधीनता तक मध्यप्रदेश का योगदान श्री गौरव गाथा प्रस्तुत करने के लिये श्री कैलाश घनश्याम पाण्डेय, निश्चय ही भूरि-भूरि प्रशंसा के अधिकारी हैं। पाण्डेय जी को मैं करीब आधी सदी से एक समर्पित अध्येता के रूप में जानता हूं। जो कार्य भी हाथ में लेते हैं, उसे लगन से समर्पण से पूरा करते हैं। मध्यप्रदेश के दस संभागों के वर्तमान 52 जिलों की संघर्ष गाथा को, संक्षेप में, इतने सलीके से प्रस्तुत किया हैं कि किसी भी प्रमाणिक - उल्लेखनीय घटना का वर्णन छूटा नहीं है। सामान्य पाठकों के लिए यह गौरव-गाथा 'गागर-में- सागर' है। अपने सहयोगियों के साथ उन्होंने इसे संपन्न किया है।

सन् 1857 में संघर्ष की ज्वालाएं हिमालय से सतपुडा - नर्मदा तक जल उठी थीं। 10 मई को जो चिन्गारी मेरठ से उठी थी, शीघ्र ही वह ग्वालियर, बुन्देलखण्ड, मालवा बघेलखण्ड और भोपाल क्षेत्रों में, याने पूरे वर्तमान मध्य प्रदेश में ज्वाला बनकर फूटी। प्रदेश की जनता दोहरी गुलामी के विरुद्ध रियासती इलाकों को भी उठे खड़ी हुई। मतभेद भूलकर हिन्दू, मुसलमान, ऊंची जातियाँ दलित, आदिवासी आज़ादी के लिए गलवाही देकर खड़े हो गये। दूसरी तरफ,

सिन्धिया, होल्कर भोपाल की नवाब, पन्ना, रीवां और अन्य राजा-महाराजा अंग्रेजों की और से जनता पर जुल्म ढाते रहे। देश से गद्दारी करते रहे।

इसके साथ ही विभिन्न जिलों में बुन्देला विद्राह, बंग-भंग 1920 का असहयोग आन्दोलन, 1930-32 का नमक सत्याग्रह, जंगल सत्याग्रह, अण्डा सत्याग्रह 1940 का व्यक्तिगत सत्याग्रह, 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की घटनाओं का उल्लेख भी संक्षिप्त में मिलता है। शहीदों और स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख नेताओं के नामों के साथ ही प्रत्येक जिले के स्वतंत्रता संग्राम की संख्या भी प्रस्तुत की गयी है। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी में भी रेखाकित किया गया है। प्रमुख स्वतंत्रता संग्रामियों के फोटो पत्रिका के मुख पृष्ठ पर छापा गया। साथ ही जिलों के नक्शे भी यथा स्थान दिये गये। यह सोने में सुहागा है। क्योंकि भूगोल की जानकारी के बिना, इतिहास के अनेक तथ्यों को समझना कठिन है। श्रेष्ठ पत्रिका 'कला समय' के संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास ने स्वतंत्रता की गौरव-गाथा प्रकाशित कर अत्यंत सराहनीय कार्य किया है। कला, संस्कृति, साहित्य और अन्य समसामयिक विषयों पर लेख प्रकाशित कर, कला समय, ज्ञान के पथ को आलोकित कर रहा है। और 25 वर्षों तक 'निरंतर प्रकाशित करते रहना कोई छोटी उपलब्ध नहीं है।

- शम्भुदयाल गुरु

पूर्व निदेशक, मध्य प्रदेश जिला गजेटियर एवं

मध्य प्रदेश राज्य अभिलेखागार

समय की शिला पर कला का कमनीय रेखांकन

प्रिय श्रीवासजी,

'कला समय' का जून-जुलाई अंक पढ़कर में नाद ब्रह्म की असीम अगाध पारा में प्रवाहित होकर अपने अस्तित्व को नाद धारा में विलीन कर चुका हूँ इस अत्यन्त सारगर्भित लेखों से सज्जित अंक के निष्पादन, सम्पादन और प्रस्तुति के लिए बधाई एवं शुभ-कामनाएँ। इस अंक की अतिथि सम्पादक विदुषी एवं संगीत-मर्मज्ञ सुश्री प्रो. मधु भटट तैलंग ने जिस मनोयाग और जिस तन्मयता से किया, जिन ऊर्जा आप्त तेजस्वी विद्वत्-प्रतिभाओं के आलेखों से किया, उससे लगा कि हमारा अतीत यदि गर्व मय है तो वर्तमान भी

डॉ. नारायण व्यास द्वारा कला समय पत्रिका के नाद ब्रह्म विशेषांक का लोकार्पण बिड़ला म्यूजियम में किया गया

निराश नहीं करता। युवाओं से लेकर प्रौढ़, वय-वरिष्ठ साधकों कलाकारों का यह प्रातिभ प्रकाश देखकर कर लगा जैसे हमारा समय जितना बड़ा कला समय है, उतना ही महान जीवन समय भी है। हम केवल भौतिक साधनों संसाधनों में नहीं जीते बल्कि भारतीय जीवन मूल्यों में कलाएँ हमारे नूतन ऋषित्व की रचना करती है, संगीत हमें नाद ब्रह्म से ब्रह्ममय बनाता है, संगीत यह भाव संज्ञा है जिसके रस की अथ और इति दोनों में आनंद की गहन, अतलांत और परम अनुभूति होती है। संगीत का तो तात्पर्य ही यह है कि वह हमें गीतमय

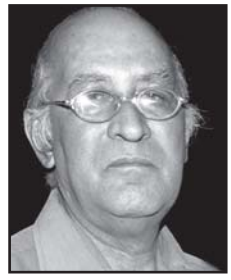

बनाकर अपने संग कर लेता है। संग होना ही तो उसमें समाहित रूप होता है। मैं इस अंक के लिए बहन डॉ. मधु भट्ट तैलंग को विशेष रूप से बधाई दूंगा क्योंकि जहाँ अपने ज्ञान, अध्ययन, शोध परिशोध की प्रगतम प्रस्तुति दी है, वहीं संगीत की नाद यात्रा के ऐसे परिव्राजकों को भी इस अंक में प्रस्तुत किया है जिन्हें पढ़ कर लगा जैसे हम शंकराचार्य जैसी विदन्ध अपरिमेय दार्शनिक विभूति के साक्षात दर्शन कर रहे हों।

भाई नर्मदा प्रसाद उपाध्याय मेरे लिए सदैव प्रेरक रहे हैं। मैं भले वय वृद्ध 87 वर्ष का हो गया किन्तु ज्ञान, साधना, समर्पण और अध्ययन आलोक से प्रतिभासित उनका व्यक्तित्व मेरे लिए एक वरिष्ठ और बड़े भाई के सदृश्य है। डॉ. मधु ने इस अंक में जिन बारह विभूतियों को सहेजा और सजाया है, उनमें उनके सहित चार स्त्री-कला लेखिकाएँ हैं। यह आश्वस्त करता है कि हमारी मातृशक्ति की काया में जो संगीत की नाद-शक्ति है, वह भी किसी पुरुष से कम नहीं। उनका श्रम और चयन-विवेक सार्थक हुआ। परिचितों में अनुजवत कवि-कथाकार लक्ष्मीनारायण पयोधि और बहन डॉ. सुमन चौरे के उत्कर्ष को देखकर गर्व का अनुभव होता है। सर्वश्री अशोक आत्रेय, राजेन्द्रकृष्ण अग्रवाल, डॉ. सृष्टि माथुर, डॉ. श्याम सुन्दर शर्मा, डॉ. राजेन्द्र रंजना, डॉ. रविदीन, डॉ. सायवती, डॉ. राजेश शर्मा, डॉ. मोहन लाल जैसे प्रबुद्ध संगीत साधकों और अध्येताओं और विशेष रूप से ग्रहम के परम उपासक ध्रुवदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग का डॉ श्याम सुंदर शर्मा द्वारा साक्षात्कार इस अंक की महत उपलब्धि है। समस्त कलाविदों के प्रति मेरा नमन और विशेष रूप से मधु बहन और श्रीवास जी आपको पुन: बधाइयाँ।

– **रमेश दवे,** वरिष्ठ साहित्यकार

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कला समय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

आपका अपना

कला समय प्रकाशन

● सुरूचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ●
● नयनाभिराम पेपरबैक में...

- कला समय प्रकाशन द्वारा कला, साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित उत्कृष्ट पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। हम प्रकाशन के लिए अच्छी पुस्तकों की पांडुलिपियाँ आंमत्रित करते है। चयनित पांडुलिपियों का प्रकाशन लेखक और प्रकाशक की परस्पर सहमति से तय शर्तो के अनुसार किया जायेगा।
- जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक अनुदित, संपादित रचनाओं को पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है। वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज की एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ कला समय प्रकाशन, भोपाल से संपर्क करें।

विशेष सुविधा

- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद, चर्चा आदि की व्यवस्था है।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुविधा भी उपलब्ध है।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, कला समय ऑनलाईन आदि) पर भी विक्रय के लिये प्रदर्शन की व्यवस्था है।

आप स्वयं पधारे या संपर्क करें....

0755-2562294, 9425678058

kalasamayprakashan@gmail.com

कार्यालय: जे-191, मंगल भवन, ई-6
महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462016 (म.प्र.)

आज़ादी का अमृत महोत्सव

मध्यप्रदेश शासन

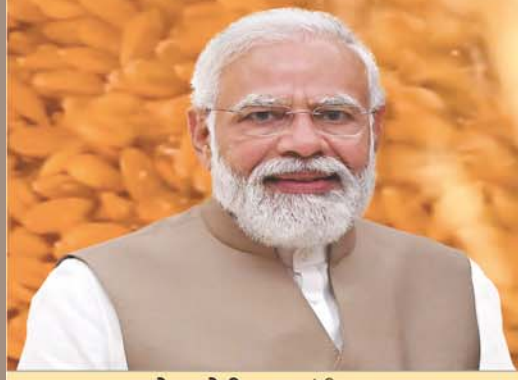

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

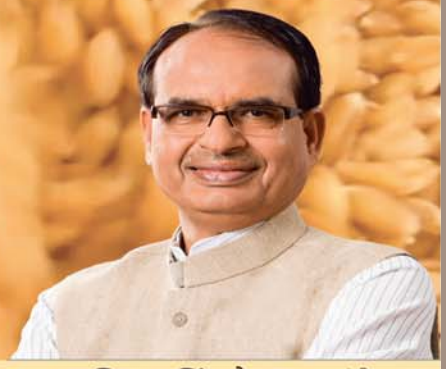

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

अन्न उत्सव

हर माह 7, 8 और 9 तारीख को

प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना
प्रति सदस्य 5 किलो निःशुल्क खाद्यान्न वितरण

- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम अंतर्गत खाद्यान्न 5 किलो प्रति सदस्य 1 रु. प्रति किलो
- अंत्योदय अन्न योजना - 35 किलो प्रति परिवार 1 रु. प्रति किलो
- प्राथमिकता श्रेणी परिवार - 5 किलो प्रति सदस्य
- नमक - 1 रु. प्रति किलो प्रति परिवार
- शक्कर - 20 रु. प्रति किलो अंत्योदय अन्न योजना अंतर्गत
- प्रत्येक दुकान पर नोडल अधिकारी की नियुक्ति
- राज्य स्तर से भी मॉनिटरिंग

हितग्राही की पहचान हेतु eKYC करायें। आपको वितरित सामग्री की जानकारी SMS से देने हेतु मोबाइल नम्बर POS में दर्ज करायें।

अपील : अन्न उत्सव के अवसर पर उचित मूल्य दुकान से राशन प्राप्त करें।

119 लाख परिवार, 509 लाख हितग्राही

वन नेशन वन राशन कार्ड के तहत किसी भी दुकान से राशन प्राप्त करने की सुविधा

D-19374/22

खाद्य, नागरिक आपूर्ति एवं उपभोक्ता संरक्षण विभाग, मध्यप्रदेश शासन

सबको भोजन, पर्याप्त पोषण

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2022

महारास : लघु चित्र, उन्नीसवीं सदी- नाथद्वारा शैली

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास